वैदिक वन्दना गीत

सत्यकाम विद्यालंकार

ओ३म्

श्रद्धानन्द स्मारक निधि के सदस्यों की सेवा में

प्रिय महोदय !

गुरुकुल की ओर से संवत् २०२० (१९६३ ई.) के लिए स्वाध्याय की 'वैदिक वन्दना गीत' पुस्तक प्रस्तुत करते हुए हर्ष होता है यह स्वाध्याय मञ्जरी का २६ वां पुष्प है । प्रस्तुत पुस्तक के लेखक गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के योग्यतम लब्धप्रतिष्ठ स्नातक श्री पं० सत्यकाम विद्यालङ्कार ने 'वैदिक वन्दना गीत' रूपी सोम सुधा को पाठकों के लिए सरस रूप में उपस्थित किया है । उन्होंने प्रस्तुत पुस्तक का सर्वाधिकार भी गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय को दे दिया है जिस के लिए हम उन का हार्दिक धन्यवाद करते हैं ।

आशा है वैदिक स्वाध्याय के प्रेमी पाठक पुस्तक का स्वाध्याय कर आनन्द-लाभ करेंगे ।

सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार
उपकुलपति
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

आदि कथन

'वैदिक वन्दना गीत' पुस्तक का लक्ष्य, उस जनसामान्य को वैदिक काव्य का रसास्वादन कराना है, जो संस्कृत से अनभिज्ञ रहने के कारण उससे वंचित है।

किन्तु यह लक्ष्य केवल मन्त्र-पाठ या गीत-गायन से पूरा नहीं हो सकता। जिसे वैदिक मन्त्रों का आनन्द लेना है, उसे साधना करनी होगी। इस अमृत के अधिकारी वही होंगे, जो वैदिक मन्त्रों के अर्थ जानने से पूर्व वैदिक विचारधारा से कुछ परिचय पालेंगे और जिनका मानस अध्यात्म-अनुभूति के लिए तैयार होगा।

जिन आद्य ऋषियों के हृदय में इस अलौकिक अनुभूति की अभिव्यक्ति हुई और जिनकी वाणी में इस ज्ञान को वितीर्ण करने की शक्ति आयी, उनका मानसिक स्तर साधारण पुरुषों से बहुत ऊँचा था। उस स्तर तक पहुँचना सर्वसाधारण के लिए कठिन है। किन्तु उसके निकट के स्तर तक पहुँचे बिना वेदों के गहन अर्थ समझना भी कठिन है।

उस स्तर तक पहुँचने में वैदिक तत्त्वदर्शन की मूलभूत स्थापनाओं से परिचय पाना बहुत सहायक होगा। इसीलिए उन मूल तत्त्वों का संकेत मैं इन पंक्तियों में करना चाहता हूँ।

वे तत्त्व मुख्यतः निम्न हैं :—

१. समस्त विश्व का – जिसमें अनेक ज्ञात एवं अज्ञात सौर मंडल भी हैं – अधिष्ठाता एक सच्चिदानन्दमय परब्रह्म है। वह अनादि, अनन्त, सर्वज्ञ और स्वयं ज्योतिष्मान है। समस्त सृष्टि एक सुव्यवस्थित रचना है। समस्त प्राणि जगत्‌का वही प्रजापति है। उसी अव्यक्त के एक अंश से व्यक्त होकर सृष्टि उसी अव्यक्त अनन्त सत्ता में लीन हो जाती है।

२. समस्त विश्व का संचालन करने के लिए उसने अपनी विविध सूक्ष्म शक्तियों को स्थूल रूप देकर पृथ्वी, अग्नि, वायु और विद्युत् आदि शक्तियों का संचरण किया है। इन देवशक्तियों के माध्यम से ही प्रभु की मंगलदायिनी

शक्तियों की अभिव्यक्ति होती है। पंचभूतात्मक यह विश्व शरीर भी परमात्मा का निवास-स्थल है। जीवात्मा को इन देवशक्तियों के प्रति उसी प्रकार आराध्य और सख्य भावना रखनी चाहिये, जैसे वह इन शक्तियों के स्वामी परम ब्रह्म के प्रति रखता है।

३. जीवात्मा प्रत्येक देही में निवास करता है। विश्वात्मा की कुछ शक्तियाँ उसमें एक सीमित परिमाण में विद्यमान हैं। इसलिए वह जब विशुद्ध रूप में होता है, तो अपने को परम सत्ता के बहुत निकट अनुभव करता है। परमात्मा का साक्षात्कार करना उसका सबसे प्रिय कार्य है। जीवात्मा सम्यक् ज्ञान एवं अभ्यास से अपनी सूक्ष्मतम दिव्य शक्तियोंका विकास करके विश्व की सूक्ष्म चेतना से सम्पर्क बना सकता है। और तब वह इन्द्रियातीत विषयों को ग्रहण कर सकता है, परोक्ष वस्तुओं का साक्षात्कार कर सकता है, अनाहत शब्दों का श्रवण कर सकता है। और विश्व में व्याप्त ब्रह्म शक्ति के अनन्त स्रोत से अपना सम्बन्ध बनाकर उससे आनन्द ग्रहण कर सकता है। तथा चरम साधना से विश्व के मूल में भी प्रवेश करके अमृतत्व की प्राप्ति कर सकता है।

४. जीव का धर्म है कि वह पुरुषार्थ करे। सृष्टा ने उसमें अनन्त कर्तृत्व दिया है। उसका कर्तव्य है कि वह अपने पुरुषार्थ से ईश्वर-प्रदत्त वैभव में वृद्धि करे। परमार्थ ही पुरुषार्थ का चरम लक्ष्य है। लौकिक उत्कर्ष की सार्थकता भी आत्मिक आनन्द की प्राप्ति में है। सांसारिक कार्य करते हुए भी मनुष्य परम सुख पा सकता है, यदि वह फल की इच्छा त्यागकर अपने सब कर्म ईश्वरार्पित कर देगा। ईश्वरार्पित कर्म करनेवाला मनुष्य ही भोगों की समाप्ति के बाद अमृत पद की प्राप्ति कर सकता है।

५. ईश्वर की उपासना से जीवात्मा परमसत्ता की निकटता का अनुभव करता है। इसलिए जीवन के प्रत्येक क्षण में उसे वन्दनाशील रहना चाहिये। प्रभु के अनन्त दान के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना ही भक्ति है। सर्वत्र परमसत्ता का अस्तित्व अनुभव करके उसके चरणों में समर्पित रहने से मनुष्य का मन अहंकारी नहीं होता। अहंभावना ही मनुष्य और परमात्मा के बीच की दीवार है। विनयपूर्ण वन्दना, आराधना और समर्पण से अहंभाव की निवृत्ति होती है। अतः प्रत्येक क्षण प्रार्थना रत रहना चाहिये।

प्रस्तुत पुस्तक में प्रत्येक मूल मन्त्र के साथ उसके भावार्थ और भावगीत दिये गये हैं। इन भावगीतों को गेय बनाने के लिए यथा संभव सरल शब्दों का प्रयोग किया गया है। सरल बनाने के प्रयत्न में अनेक स्थलों पर मन्त्रों के गूढ़ार्थ की व्याख्या गीतों में नहीं हो पायी है। अतः मैं इन गीतों में मन्त्रों का पूर्ण अनुवाद होने का दावा नहीं कर सकता। मन्त्र के मुख्य भाव को आधार मानकर गीतों की रचना की गयी है।

आभार स्वीकृति तथा निवेदन

'वैदिक वंदना गीत' में प्रस्तुत अनेक गीत आकाशवाणी द्वारा प्रसारणार्थ सुरक्षित हो चुके हैं तथा अनेक गीत फिल्म उद्योग के प्रसिद्ध निर्देशक श्री अनिल विश्वास के निर्देशन में प्रसारित हो चुके हैं। इन गीतों के प्रति आकाशवाणी बम्बई के संगीत-विभाग ने श्रद्धा प्रदर्शित की, तदर्थ उनका आभार मानते हुए मैं पुस्तक के संगीतज्ञ पाठकों से विनति करता हूँ कि वे इन गीतों के संगीत का सार्वजनिक प्रदर्शन लेखक की अनुमति के बिना न करें।

पुस्तक की कलाकृतियों तथा मुखपृष्ठ के प्रणयन का श्रेय नवनीत के प्रशस्त कलाकार श्री ओके को है। मैं उनका आभारी हूँ।

इन गीतों का सार्वजनिक प्रदर्शन प्रभात उद्योग के श्री बृजराज मिश्र की आर्थिक सहायता से ही संभव हो सका, उनके श्रद्धापूर्ण अनुदान के लिये मैं कृतज्ञ हूं।

गीतों की स्वरलिपि

इन गीतों की स्वरलिपि तैयार हो रही है। अगले तीन महीनो में यह स्वरलिपि तैयार हो जायेगी। जो सज्जन इस स्वरलिपि का लाभ लेना चाहें वे मंत्री, सोमसुधा मंडल, चन्द्रेश्वर भुवन, २।१७८ सायन रोड, वेस्ट: के पते पर अपनी प्रति सुरक्षित कर सकते हैं।

—सत्यकाम विद्यालंकार

मन्त्रक्रम

सोम, गीर्भिष्ट्वा वयं वर्धयामो वचोविदः ।

हे प्रभु ! हम इन गीतों से तेरे आनन्दका
सदैव विस्तार करते रहें ।

समर्पण

हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्दजी

जिनके चरण-स्पर्श से पावन, थी गंगाधारा निर्मल।
जिनकी ममता पा हिमगिरि के, वन का हरित हुआ आँचल।
जिनकी ओज-भरी वाणी में, वेद-ऋचाओं का स्वर था।
जिनके तपःपूत मानस को, वैदिक ऋषियों का वर था।
उनके ही चरणों में अर्पित, सोमसुधा के ये उद्गार।
स्वामी श्रद्धानन्द! वन्दना-पुष्प, करो मेरे स्वीकार।

देवता – व्रात्यः ।

तस्य व्रात्यस्य एकं तदेषा – ममृतत्वमित्याहुति रेव ॥

अथर्व. १५·१७·१० ॥
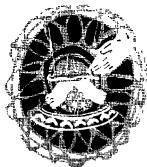
व्रात्य अमर पद के हे साधक। ध्यान सदा ही तुम यह रखना।
जीवन एक यज्ञ है; समिधा बनकर उसमें जलना।

तभी अमृत वरदान मिलेगा। तभी अमृत का पुष्प खिलेगा।
तभी जलेगी ज्योत हृदय में, तभी पूर्ण आनंद मिलेगा।

व्रात्य व्रतों के हे आराधक! तभी बनेंगे प्रभू सहायक।

देवता – अग्निः ।

अग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्य देव मृत्विजम्
होतारं रत्नधातमम् ॥ ऋक् १.१.१. ॥

विश्व की है आदि चेतन ज्योति, तुझ को शत प्रणाम।
तू अगोचर अगम तुझ से, ही विभासित विश्व धाम॥
मौन तू, फिर भी चतुर्दिक, आ रहा आह्वान तेरा।
रत्नगर्भा है धरित्री, व्योम यज्ञ-वितान तेरा॥

देवता – सविता।

भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यम् भर्गो देवस्य धीमहि
धियो यो नः प्रचोदयात्

ऋग्वेद ३.६२.१०, यजुर्वेद ३.३५, साम ३.६.१० ॥

भगवान की ज्योति के प्रकाश में चलने की कामना करते हुए वेद का दिव्य कवि संकल्प करता है—

'भूः भुवः स्वः सवितुः देवस्य' पृथ्वी, नभ, अन्तरिक्ष में दिव्य सविता, प्राण प्रसू आद्य शक्ति व्याप्त है। हम उसकी **'वरेण्यं भर्गो धीमहि'** श्रेष्ठतम तेजोमय ज्योति को हृदय में ग्रहण और धारण करते हैं।

उस दिव्य प्रकाश के बिना हमारे हृदय का अन्धकार दूर नहीं होगा। स्वतः प्रकाश केवल वह दिव्य ज्योति ही है। अन्य सब प्रकाशों में दिव्यता नहीं है।

वह दिव्य मेधा ही **'नः धियो प्रचोदयात्'** हमारे विवेक को प्रेरित करे। इस मेधा की उपलब्धि केवल परम ज्योति को हृदय में धारण करके ही हो सकती है। विश्व-ज्योति से आत्मदीप को प्रज्ज्वलित करने के बाद ही बुद्धि में सदसद्विवेक जागृत होगा। यह विवेक ही मनुष्य का पथ दर्शक बन सकता है।

वरेण्यं भर्गः

भूर्भुवः स्वः – तीनों धाम
ज्योति आपकी है अभिराम
परम पुरुष हे ज्योतिर्मान
हम सबको दो यह वरदान

ज्योति आपकी जगे हृदय में
तेजवन्त हों हम जीवन में
मन में रहे आपका ध्यान
हम सबको यह दो वरदान

वही ज्योति प्रेरक बन जाये
उससे प्राण प्रेरणा पाये
उससे मिले सत्य का ज्ञान
हम सबको दो यह वरदान

परम 'पुरुष हे ज्योतिर्मान
हम सबको दो यह वरदान
सविता हो तुम स्वयं प्रकाश
आओ अन्तर हृदयाकाश

सविता, अमर-ज्योति से सबके
रहें प्रकाशित अन्तःप्राण
परम पुरुष हे ज्योतिर्मान
हम सबको यह दो वरदान

देवता – इन्द्रः ।

> **इन्द्राय पवते मदः सोमो मरुत्वते सुतः ।**
> **सहस्रधारो अत्यव्यमर्षति तमीमृजन्त्यायवः ।।**

साम पूर्वार्चिक. ६.३.१०॥

समस्त विश्व के रोम-रोम से प्रस्फुटित असीम आनंद में विभोर ऋषि अखिल सौन्दर्य तत्व के मूल स्रोत सोम की प्रशस्ति करता है —

यह **'सोमः सुतः'** प्राणवंत आनन्द का निर्झर सोम **'मरुत्वते इन्द्राय पवते'** प्राणेश्वर इन्द्र की आराधना के लिए ही अनन्त काल से बह रहा है।

यह **'सहस्रधारः सोमः अतिअव्यम् अर्षति'** सहस्रों धाराओं और रूपों में प्रवाहमान सोमसुधा प्राण - मंदिर, मनुष्य के बाह्याभ्यन्तर को आप्लावित कर रही है। यह सोम, सात्विक आनन्द का प्रवाह **'आयवः ईमृऋजन्ति'** मन के क्षुद्र अहंकार को डुबोकर विश्वात्मा में पूर्ण विलय करके उसे शुद्ध कर रहा है। मेरा हृदय सरोवर इस पावन सोमरस से सदा पूर्ण रहे।

सहस्र धारा

बहे सोमरस धार, जग में
बहे सोमरस धार!

नभ के अन्तराल से गहरे
आती यही पुकार!
बहे सोमरस धार!

झरता रहे सोमरस निर्झर
सौरभ भरा पवन!
मद से भरे कलश जैसे हों
भरे रहें घन सदा मगन!

शत सहस्र धाराओं में
बरसे जलद उदार!
बहे सोमरस धार! जग में
बहे सोमरस धार!

देवता – पवमानः सोमः ।

स्वादिष्ठया मदिष्ठया, पवस्व सोम ! धारया । इन्द्राय पातवे सुतः ॥

ऋक् – ९. १. १; यजु. २६. २५ ॥

मादक मधुर सोमरस बहता, शत सहस्र धाराओं में,
पर्वत के झरते झरनों में, सौरभ भरी हवाओं में,
देव पुत्र तेरा अभिषिंचन, करने सावन-घन आते।
तेरे अर्चन को ही सागर, मंगल घट भर-भर लाते,
तेरे गीतों का गुँजन-रव, फैला दिशा-दिशाओं में।
मादक मधुर सोमरस बहता, शत-सहस्र धाराओं में।

देवता–इन्द्रः।

तुञ्जे तुञ्जे य उत्तरे, स्तोमा इन्द्रस्य वज्रिणः।
न विन्धे अस्य सुष्टुतिम्॥ ऋक्—१.७.७.॥
अथर्व—२०,७०.१३.॥

दाता रे, दाता रे। पल-पल देता जाता रे।
माँग बिना तू देता सदा ही, नव-नव अनगिन देता सदा ही,
दिन पल छिन मैं लेता ही,
तेरे द्वार से दान सदा मैं, पाता रे–
तेरी महिमा गरिमा गाते, गीतों से हम तुझे रिझाते।
पर हे देवता! तेरा गुण-गौरव,
कौन कहो गा पाता रे। दाता रे-दातारे।

देवता – सोमः ।

सोम ! गीर्भिष्ट्वा वयं
वर्धयामो वचोविदः।
सुमृलीको न आविश ॥

ऋक्–१.९१.११ ॥

आत्मानन्द अनुभव करने के बाद वेद 'का उद्गाता ऋषि विश्व में ब्रह्मानन्द प्रसारित करने की कामना से प्रेरित होकर स्वर स्वामी सोम से विनय निवेदन करता है।

'सोम ! वयं वचोविदः' हे सोम ! असीम सुख-सौन्दर्य के देवता ! हम वाणी के वरद भक्त **'त्वा गीर्भिः वर्धयामः'** अपनी वाणी से आपके आनन्द की वृद्धि करते हैं। हमारे मुख से जो गीत प्रसारित हों, वे विराट विश्व के मौन को आनन्द के कलरव से भर दें। आपके स्तुति-गीतों की गूँज से चराचर का हृदय आनन्द विभोर हो उठे।

किन्तु हे दिव्य गायक ! हे नादमय ब्रह्म ! हमारे कण्ठ से उच्चरित गीतों में यह प्रभाव तभी होगा, जब हमारे हृदय में आप स्वयं विराजमान होंगे। हमारे रोम-रोम मे आपके आनन्द का उल्लास रम जायेगा।

इसलिए हे **'सुमृलीकः नः आविश'** आनन्द मय ! आप हमारे हृदय मन्दिर में अपने आनन्द का विस्तार करो। हमारी भावनाओं को शुद्ध निर्मल बना दो। हमारी हृदय वीणा में अपने ही स्वर भर दो। आनन्द-पुलकित कण्ठ से जब हम आपके गीत गायेंगे, तो विश्व का रोम-रोम आनन्द पुलकित हो उठेगा।

सोम ज्वार

गायें उसके गुण गौरव के, मधुर गीत सब मिलकर ।
करें प्रवाहित उन गीतों का, सुधा-स्रोत वसुधा पर ।
जो अतृप्ति को मिटा, तृप्ति का करता रहता सर्जन ।
वरदानों के स्नेह-वारि का, करता मधुमय वर्षण ।
उसके स्तुति-गीतों की गति में, बह जायें मन के विद्वेष ।
ऐसा निर्झर बहे प्रेम का धुलें कलुष, मिट जाये क्लेश ।
सूरज-चाँद-सितारे करते, नित जिसका अभिनन्दन ।
ऐसे वन्दनीय ईश्वर का, हम सब भी करते वन्दन ।

देवता – पवमान सोमः ।

अनुप्रत्नास आयवः, पदं नवीयो अक्रमुः–
रुचे जनन्त सूर्यम् ।

साम पूर्वार्चिक ६.२.६,ऋग्वेद ६.२३.२ ॥

प्रत्येक मनुष्य के मौलिक कृतित्व पर पूर्ण आस्था व्यक्त करते हुए वेद की ऋचा आदेश देती है कि अपने मौलिक सृजन पर अटल विश्वास रखो । भगवान ने प्रत्येक प्राणी को नवीन सृजन की क्षमता दी है ।

'**अनुप्रत्नास आयवः**' अनुकरण प्रिय मनुष्य भौतिक सृजन नहीं करते । अपनी क्षमता पर आस्था रखकर '**नवीयो पदं अक्रमुः**' नवीन मार्ग अपनानेवाले ही नवीन प्रतिभा से नूतन निर्माण करते हैं ।

सृजन आत्मा के प्रकाश मे होता है । बाह्य प्रकाश की अपेक्षा न करो । पुरानी प्रेरणाओ के दीप मंद हो गये हों, तो '**रुचे जनन्त सूर्यम्**' अपनी रुचि का सूर्य स्वयं बना लो । असीम प्रेरणाओं के स्रोत अपने अंतः सूर्य को प्रदीप्त करो । अंतरात्मा की आदित्य रश्मियाँ ही प्राणवंत कला का पथ उज्ज्वल करती हैं ।

अन्तः सूर्य

मानव दिव्य शक्ति के स्वामी, बनो अग्रणी नहिं अनुगामी,
अपने ही अनुभव के बल पर, नये सृजन-आधार बनाओ।
अपने सूर्य आप बन जाओ।

निर्माता तुम हो निज पथ के, स्वयं विधाता हो विधि-सुधि के,
हैं अनन्त सबकी क्षमताएँ अन्तर में विश्वास जगाओ।
अपने सूर्य आप बन जाओ।

चलो न मिटते पद-चिह्नों पर, रुको न बाधाओं-विघ्नों पर,
नित्य नयी आलोक रश्मि से, अपनी प्रतिभा स्वयं जगाओ।
अपने सूर्य आप बन जाओ।

देवता – उषा।

उदीर्ध्व जीवो असुर्न आगात् अपप्रागात्तम आज्योतिरेति
आरैक पन्थां यातवे सूर्याय, आगन्मयत्न प्रतिरन्तआयु:।।

ऋक् १.११३.१६ ॥

उषाकाल में वेद का जागृत ऋषि मानव मात्र को सूर्य की प्रथम किरण के साथ जागरण का संदेश देते हुए कहता है: '**उदीर्ध्व, नः जीवः असुः आगात्**' उठो, नवीन प्रभात नये जीवन का संदेश लेकर आ गया है।

'**तमः अप प्रागात्**' रात्रि के अंधकार के साथ जीवन की तामसी निद्रा का भी अंत हो गया।

'**आ एति ज्योतिः सूर्यायपंथा आरैक**' ब्रह्म वेला की इस शुभ्र ज्योति ने सूर्य के मार्ग को प्रशस्त कर दिया है।

उषा के स्वर्णिम हाथों ने हमारे कर्ममय जीवन का मंगल द्वार खोल दिया है। '**आयुः प्रतिरन्ते**' अब हमारे कर्ममय आयुष्य की वृद्धि होगी।

'**आ अगन्म**' हम अपने जीवन के उस सन्धिस्थल पर खड़े हैं, जहाँ से सूर्य का ज्योति मार्ग प्रारम्भ होता है। आओ, सूर्य के साथ अपने जीवन के मध्याह्न की विजय-यात्रा शुरू करो। विकास के शिखर पर पहुँचने के लिए पग बढ़ाओ।

इन नियमों को अखण्डित रखने के लिए विधाता ने स्वयं अपने को भी इन नियमों में बाँधा है। नियम कहकर भी वह स्वयं नियम पालक बना है। वेद की इस ऋचा में यही सत्य प्रकट किया गया है।

अरुणोदय

उठो देव गण ! जागो सुन्दर–यह प्रभात-वेला आयी।
निशा-कालिमा दूर हो चली, उषा-अरुणिमा नभ छायी।

नवजीवन की आभा फैली, हुआ प्रकृति का नव शृंगार—
दिव्य ज्योति का उदय हुआ, फिर चमक उठा सारा संसार।

प्राची में अरुणोदय होगा, पल में यह जग जगमग होगा।
पंकज-दल में अवनी-तल में विकसित नूतन जीवन होगा।

अन्तर तम में परम ज्योति यह जाग उठेगी अब निश्चय,
उसके दिव्य प्राण को पाकर देव बनेंगे मृत्युञ्जय।

पहुँचें हम उस दिव्य-मार्ग में जहाँ न फिर जीवन का क्षय
आगे ही आगे बढ़ना है, गति है, जय है और अभय।

देवत – अग्निः ।

अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये ।
नि होता सत्सि बर्हिषि ।। साम १

अग्ने ! '**होता**' होता तू '**गृणानः**' गुणानुवादित होकर '**आयाहि**' आ, '**वीतये**' प्रकाशन के लिए तथा '**हव्य-दायते**' हव्य प्रसाद देने के लिए। '**बर्हिषि**' आसनपर '**निसत्सि**' नित राम बैठ निरन्तर विराज ।

हे ज्योतिर्मय आओ ।
अँधेरा गहरा तन-मन में, अन्तर में दीप जलाओ ।
युगों-युगों से बुझी हुई है, मन की जोत हमारी ।
सूर्य-चन्द्र विद्युत् तारे सब तेरे रहें भिखारी।
मेरी सूनी कुटिया में भी अपनी जोत जगाओ
हे ज्योतिर्मय आओ ॥

नये प्राण जागें तन-मन में, हव्य बनूँ मैं यज्ञ सदन में ।
परम देवता, तेरे अरपन कर्म-धर्म हों सब जीवन में,
ऐसे भाव जगाओ, हे ज्योतिर्मय आओ. ।

देवता — सोमः ।

सोम रारन्धिनो हृदि, गावो न यवसेष्वा ॥
मर्य इव स्व ओक्ये—

ऋक् – १. ९१. १३.

मन मेरे प्रिय सोम रमो ।
जैसे अपने घर-आँगन में रमते ऐसे रमण करो ॥

जैसे गौएँ वन-उपवन में, दिन भर मनमाना विहरें,
ऐसे ही प्रभु मेरे मन में, हर पल आनन्द से विहरो ॥

मुझको बस श्रम ही करने दो, अपना चाकर ही रहने दो,
बनकर इस जीवन खेती के– मालिक फल का भोग करो ॥

आओ मेरे मन मन्दिर में जैसे सब अपने हो घर में
आते। अतिथि नहीं गृहस्वामी बनकर प्रभु तुम भी विचरो ॥

देवता – आत्मा।

यो भूतं च भव्यं च, सर्वं यश्चाधितिष्ठति।
स्वर्यस्य च केवलं, तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः॥

अथर्व० १०.७.३१.॥

यस्य भूमिः प्रमा, अन्तरिक्षमुतोदरम्।
दिवं यश्चक्रे मूर्धानं, तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः॥

अथर्व १०.७.३२.॥

विश्व पुरुष के कालातीत विराट रूप के साक्षात्कार के बाद वेद का आद्य ऋषि परम ब्रह्म की वन्दना करता है–

'यः भूतं च भव्यं च अधितिष्ठति'—जो भूत, भविष्यत् के सभी कालो का अधिस्वामी है, त्रिकालातीत हैं; **'यश्च सर्वं अधितिष्ठति'**–जो त्रिभुवन से भी महान् है और नित्य तथा सर्वव्यापक है।

यस्य च स्वः केवलं–जो विशुद्ध द्वन्द्वातीत आनन्द का स्वामी है;....

....**'यस्य भूमिः प्रमा'**–यह विशाल भूमि जिसके चरण हैं; **'उत अन्तरिक्षं उदरम्'**–यह आकाश जिसके मध्य भाग में है ; **यः 'दिवं मूर्धानं चक्रे'**–अन्तरिक्ष लोक के ज्योतिर्मय ग्रह-उपग्रह जिसके मस्तक की शोभा हैं; **'तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः'**–उस विराट पुरुष ब्रह्म को हम नम्र प्रणाम करते हैं।....

नम्र प्रणाम

भूत भविष्यत् वर्तमान का,
जो प्रभु है अन्तर्यामी।
विश्व व्योम में व्याप्त हो रहा,
जो त्रिकाल का है स्वामी ॥ १ ॥

निर्विकार आनन्द कन्द है,
जो कैवल्य रूप सुखधाम।
उस महान् जगदीश्वर को है,
अर्पित मेरा नम्र प्रणाम् ॥ २ ॥

कोटि-कोटि योजन युग फैली,
पृथिवी जिसके चरण समान।
मध्य भाग में अन्तरिक्ष को,
रखता है जो उदर समान

शीर्ष तुल्य जिसके हैं शोभित,
ये नक्षत्र लोक अभिराम।
उस महान् जगदीश्वर को है,
अर्पित मेरा नम्र प्रणाम।

देवता—अध्यात्मम् ।

यस्य सूर्यश्चक्षुः चन्द्रमा च पुनर्णवः ।
अग्निं यश्चक्रे आस्यं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥

अथर्व० १०. ७. ३३ ॥

यस्यवातः प्राणापानौ चक्षुरङ्गिरसोऽभवन् ।
दिशो यश्चक्रे प्रज्ञानीः तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ।

अथर्व० १०. ७. ३४ ॥

विश्वपुरुष की अनन्त ज्योति के प्रतीक सूर्य, चन्द्र, अग्नि के अभिमुख हो ऋषि उसके ज्योतिर्मान रूप की वन्दना करता है—

'सूर्यः पुनर्णवः चन्द्रमा च यस्य चक्षुः'—सूर्य और नित नयी कला से चमकनेवाले चन्द्र जिस विराट पुरुष के चक्षु समान हैं; **'यः अग्निं आस्यं चक्रे'**—और सर्वत्र व्याप्त अग्नि जिसकी मुख कान्ति को व्यक्त करती है; ....

...**'वातः यस्य प्राणापानौ'**—यह वायु जिसके प्राणापान तुल्य है; **अंगिरसः यस्य चक्षुः अभवत्**—विश्व के सब प्रकाशमान् पिण्ड जिसकी नेत्रज्योति से प्रदीप्त हैं; **दिशः यस्य प्रज्ञानी**—दशों दिशाएँ पताकाओं के समान जिस विश्व शक्ति का ज्ञान देनेवाली हैं; **'तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः'**—उस सर्वतो महान् ब्रह्म को नमस्कार है।

नम्र प्रणाम

जिसकी दिव्य ज्योति से भासित,
चन्द्र-सूर्य दो दीप्त नयन।
आदि सृष्टि कल्पान्त प्रकाशित,
करता जो इनका प्रणयन।

हव्य वाहिनी अग्नि यज्ञ की,
जिसकी कान्ति ललाम।
उस महान् जगदीश्वर को है।
अर्पित मेरा नम्र प्रणाम्।

जिसके प्राणापान तुल्य है,
इस जगती का मंद पवन।
विमल दृष्टि सम फैल रही है,
नक्षत्रों की ज्योति-किरण।

इस जग के व्यवहार-हेतु है,
स्पष्ट किया जिसने दिग्ज्ञान।
उस महान जगदीश्वर को है,
अर्पित मेरा नम्र प्रणाम्।

देवता—सोमः पवमानः।

> परिप्रिया दिवः कविः
> वयांसि नप्त्योर्हितः।
> स्वानै र्याति कविक्रतुः॥

साम पू० ५. ९. १०.॥
ऋग्वेद ९. ९. १.॥

विश्व के सुदूर अन्तरिक्षों में निरन्तर ध्वनित होते दिव्य स्वरों का संगीत सुनकर समाहित हुआ ऋषि मानव मात्र को इस दिव्य संगीत का श्रवण करने की प्रेरणा देते हुए कहता है :—

'दिवः कविः नप्त्योर्हितः' देवलोक का वह स्वर-स्वामी सम्पूर्ण अन्तरिक्ष के कण-कण में व्याप्त है। उसकी **परिप्रिया** स्वर-तरंगों की चुम्बकीय चेतना-शक्ति में विश्व के विराट लोक आबद्ध हैं।

विश्व की सबसे शक्तिशालिनी ध्वनियाँ वहीं हैं, जो अतिशय उग्र होने के कारण ही अश्राव्य हैं। उन्हीं मौन स्वर-सूत्रों में विराट जगत बँधा हुआ है।

'कविः क्रतुः स्वानैर्याति' केवल कवि के अन्तःकरण के तार ही उस दिव्य स्वरधारा को आत्मसात् कर सकते हैं। बाह्य स्वरों की सूक्ष्म ध्वनियों से जब अन्तर के तारों का स्वर मिलता है, तो उनमें स्वयं एक मधुर कम्पन आ जाता है।

उस कम्पन के साथ ही हम चेतना के सूक्ष्मतम स्तर पर पहुँच जाते हैं। और तब हम उड्डीयमान लोकों में परिभ्रमण कर सकते हैं।

विश्व वीणा

मोहे अन्तर वो स्वर भर दे,
बाजें हृदय के तार।

अपने स्वर तू ऐसे भर दे,
जो मेरी सब सुध-बुध हर ले।

गीत भरे जो शशितारों में,
मोहे भी दे झंकार।
बाजें हृदय के तार।

यह मन मेरा, मन्दिर तेरा
गीत बनें उपहार।

मेरी वीणा के स्वर सोये।
प्रेम के तेरे भाव संजोये।
आओ अपने आप बजाओ,
मन तन्त्री के तार।
हे अक्षर ओंकार।

मेरे मन में, सारे गगन में।
गूँज उठे झंकार।
बाजें हृदय के तार।

देवता — पवमानः सोमः।

परिप्रासिष्यदत् कविः
सिन्धोरूर्मावधिश्रितः।
कारुं बिभ्रत् पुरुस्पृहम्॥ सामपूर्वार्चिक - ५, १०, १०.॥

दिव्य दृष्टि प्राप्त ऋषि सागर से लेकर गगन मण्डल तक व्याप्त विश्वात्मा के दिव्य स्वरों को सुनकर नादमय ब्रह्म की वन्दना करता है।

सिन्धोः ऊर्मौ अधिश्रितः-सागर की अपार जल राशि और उसकी गगनचुम्बी तरंगों पर तैरते हुए—**कविः पुरुस्पृहम् कारुं बिभ्रत्** दिव्य कवि ने प्रेम की वंशी के स्वरों में अनन्त अंतरिक्ष को —**परि प्रासिष्यदत** आच्छादित कर लिया।

उस स्वर-सूत्र के रूप में प्रभु के दिव्य प्रेम का ही आकर्षण है, जो पृथ्वी ही नहीं, नक्षत्रलोक में भी सबको शाश्वत व्यवस्था में बाँधे हुए है।

जिसने विश्वात्मा की उस सूक्ष्म स्वर ध्वनि से अपने अन्तर के स्वरो को मिला लिया, वह उसका साक्षात् अनुभव अपने हृदय में करता है। आत्मसाक्षात्कार का यही मार्ग है।

वंशी के बजते हुए उन स्वरों से अपने हृदय के स्वरों को मिलाने पर हम भी अपने विराट स्वरूप का दर्शन कर सकते हैं। अपने हृदय के कंपन में विश्वात्मा की शाश्वत ध्वनि सुन सकते हैं।

विश्व कवि

सिन्धु की उठती हुई फेनिल-
तरंगों के शिखर पर,
बैठकर जब दिव्य कवि ने-
मधुर वंशी को दिया स्वर।

व्योम मण्डल के सभी ग्रह-
बँध गये स्वर जाल में।
विश्व गायक के अनाहत-
नाद की लय ताल में।

यह अनाहत नादमय ही
ब्रह्म है, भगवान है।
इन स्वरों के सूत्र में ही
सृष्टि का सब ज्ञान है।

विश्व वीणा का अलौकिक-
स्वर, तरंगों में बहे।
एक अक्षर ब्रह्म ही में-
लीन होता जग रहे।

देवता: — सोम: पवमान: ।

उच्चा ते जातमंधसो, दिविसद् भूम्याददे
उग्रं शर्म महिश्रवः।

साम ५.६.१ ऋक् ४:६१।१०

परम व्योम की असीम ऊँचाइयों से लेकर धरती के गहन गह्वरों तक में व्याप्त स्वर तरंगो की अनुभूति के बाद वेद का आद्यकवि नादब्रह्म से निवेदन करता है।

हे स्वराधीश मेरी हृदय वीणा के तार जब आपके **'उच्चा दिविसद्'** देवलोक में व्याप्त **'उग्रं महिश्रवः'** उग्र आनंदमय स्वरों से मिल जाते हैं तो **'शर्म'** मेरा रोम-रोम पुलकित हो जाता है।

उस समय आपके अदृश्य स्वराघात से मेरी वीणा के तार झनझना उठते हैं और उनसे आपके ही स्वरों का अजस्र प्रवाह बह उठता है।

आपकी **'अन्धसः जातम्'** प्राणप्रसविनी स्वरधारा ही जगत के प्रसुप्त चैतन्य को जगाती हैं, और प्रकृति को प्राणप्रसू बनाती है, वही **'भूम्याददे'** भूमि पर उतरती है।

हे प्रभु, असीम व्योम में व्याप्त उन स्वर-सागरों को भूमि पर तब तक अनंत वर्षा करने दो, जब तक यह भूमि भी आपके स्वर-सरोवर में डूबकर स्वरमय न हो जाये और हमारे हृदय के तारों से स्वयं ही आपके दिव्य स्वरों के अजस्र प्रवाही झरने न फूट पड़ें।

दिव्य गीत

देवलोक के व्योम विहारी,
कवि के मधुर अलौकिक स्वर।
दिव्य गीत बनकर आते हैं,
अन्तरिक्ष से धरती पर।

उन गीतों से सम्मोहित हो,
सूर्य-किरण करती नर्तन।
और सुधांशु अमृत बरसाता,
गन्ध उड़ाता मन्द पवन।

हे कवि दूर लोक के वासी,
छोड़ प्रवास धरा पर आओ।
मूक पड़ी मानव हृद्तन्त्री को,
झंकृत कर मुखर बनाओ।

दिव्य उसी स्वर धारा का मैं,
एक प्रवाहित जलकण हूँ।
उसकी ही प्रतिध्वनि के स्वर का।
एक अकिंचन कंपन हूँ।

उन्हीं स्वरों से लोक-लोक में
प्राणों का होता स्पन्दन।
मौन अचेतन जगत् उन्हीं के
आघातों से है चेतन।

देवता – पवमानः सोमः ।

असर्जि वक्वा रथ्ये यथाजौ धिया मनोता प्रथमा मनीषा ।
दश स्वसारा अभिसानो अव्ये मृजन्ति वह्निं ऽ सदनेष्वच्छ ।।

साम पूर्वार्चिक ६-५-११ ॥

विश्व के असीम अजस्र सोम की सहस्र धाराओं द्वारा विराट पुरुष का अभिषेक होते देखकर वेद का प्रतिभाशाली ऋषि पुकार उठता है–

'दश स्वसारः अव्ये सानौ वह्निं अभि मृजन्ति'–आज इस विराट विश्व मण्डप में अभिषेक की तैयारियाँ हैं। दशों दिशाएँ अपने परमदेव की पूजा के लिए नैवेद्य लेकर ऐसे आयीं हैं, जैसे दस सखियाँ अपने पूज्य देवता की अर्चना के लिए मन्दिर के द्वार पर खड़ी हों।

उनके हाथों में अमृत से भरे स्वर्ण-कलश हैं। उनके आँचल में असीम लोकों के सौरभमय पुष्प हैं। और उनका मन अपने वन्दनीय की श्रद्धा से भारी है। केवल भावनातिरेक में ही वे देवार्चन के लिए नहीं आयीं, बल्कि **'धिया मनोता प्रथमा मनीषा'** पूरे विवेक और संकल्प के बाद वे अपने देवता का अभिषेक करने आयीं हैं।

यह अभिषेक प्रतिदिन होता है। सूर्य अपनी किरणों से **'रथ्ये आजौ'** महारथी विश्वात्मा का अभिषेक करता है। वरुण देव पूजा का कलश लेकर अर्घ्य चढ़ाते हैं। **'वक्वा असर्जि'** हमारी वाणी मुखर होकर उसकी अर्चना करती है।

अभिषेक

आज हमारा है अभिषेक।
दशों दिशाएँ सखियाँ बनकर,
महासिन्धु से स्वर्ण कलश भर,
नभ मंडल से उतरीं भूतल पर,
सबका अभिनन्दन करती,
रक्तिम आज क्षितिज की रेख।
आज हमारा है अभिषेक।

आज मनीषा है मंगलमय,
उल्लासों से पूर्ण हृदय,
पृथिवी नभ के अन्तराल में,
गूँज रहा स्वर जय जय जय।
आज हर्ष का है अतिरेक।
आज हमारा है अभिषेक।

लोक-लोक के पुष्प सुगन्धित,
करने को श्रद्धा निज अर्पित,
लाते सभी देवता जग के,
तू ही है सबका अभिनन्दित।
आज सागरों के अन्तर में।
भरा भावना का आवेग।

देवता – ऋतुः ।

वसन्त इन्नु रन्त्यः ग्रीष्म इन्नु रन्त्यः ।
वर्षाऽननु शरदो हेमन्तः शिशिर इन्नु रन्त्यः ।।

साम पूर्वार्चिक ६,३.१३.२. ।।

अमर यौवना प्रकृति के सब रूपों में, वर्ष की सब ऋतुओं में, अपार रमणीयता देखकर ऋषि का हृदय विश्वपुरुष की वन्दना करता है–

'वसन्त इन्नु रन्त्यः' वसन्त ऋतु की रमणीयता कितनी अपार है। यही वे दिन हैं, जब फूलों की सुगन्ध से मदमाती हवा एक छोर से दूसरे छोर तक बहती है। उसके स्पर्श से देहधारी जीव ही नहीं, वनस्पति भी पुलकित हो जाती हैं।

'ग्रीष्म इन्नु रन्त्यः' ग्रीष्मकाल की रमणीयता भी अद्वितीय है। सूर्य की उष्मा से पिघलकर हिमालय के शिखर से अनंत जलधारा बहती है। उसके स्पर्श से पृथ्वी का अंग-अंग रोमांचित हो जाता है।

'वर्षाननुशरदः' फिर वर्षा ऋतु आती है। नीला आकाश काले बादलों से घिर जाता है। मेघ में छिपी विद्युत् चमकती है। जल की सहस्र धाराएँ वृक्ष-वनस्पति को नहला देती हैं। वर्षा के बाद शिशिर, शरद और हेमन्त के शीत काल आते हैं। सभी की अपनी शोभा है, सुषमा है। इन समान रूपों में रमण करनेवाले सौन्दर्य सिन्धु भगवान हम आपकी सब रूपो में वन्दना करते हैं।

ग्रीष्म, शरद, आदि सभी तेरे रूप हैं और सभी रमणीय हैं।

रम्य विलास

हे आनन्द रूप जगदीश्वर,
जगत् तुम्हारा रम्य विलास।

कितना सुन्दर कितना मोहक
कितना सुखप्रद है मधुमास।
प्रखर ग्रीष्म ऋतु की ऊष्मा भी—
मन में भर देती उल्लास।

वर्षा की रिमझिम रुनझुन में
नर्तन करता हृदय मयूर।
शुभ्र शरद हेमन्त हर्षप्रद
शिशिर रम्यता से भरपूर।

जहाँ-जहाँ है रमण तुम्हारा
वहीं प्राण का नवल विकास।
विश्वपुरुष ! सब व्याप्त आप में
सब में प्रभो आपका वास।

देव तुम्हारी ही सुषमा से
प्राणित जग यह सुन्दर है।
सूर्य-चन्द्-नक्षत्र-सुशोभित
विश्व बन्दना मन्दिर है।

देवता — अग्निः ।

स इत्तन्तुं स विजानात्योतुं, स वक्त्वान्यृतुथा वदाति ।
य ईं चिकेतदमृतस्य गोपा अवश्चरन्परो अन्येन पश्यन् ।।

ऋक्० ६.९.३ ॥

परम स्रष्टा वैश्वानर की द्वन्द्वात्मक रहस्यमयी सृजन शक्तियों का साक्षात्कार करते हुए वैदिक ऋषि उसका वर्णन करता है —

स इत् तन्तुं, स ओतुं विजानाति—वह विधाता विचित्र जुलाहा है। जगत् का ताना भी वही तनता है और बाना भी वही बुनता है।

स ऋतुथा वक्त्वानि वदति—इस ज्ञान को वह रहस्यमय भी नहीं रखना चाहता। जिसे वह पात्र समझता है, उसे इस ज्ञान का अंश देता है।

उसने सृष्टि के इस ताने-बाने को जोड़कर अपने भाग्य पर नहीं छोड़ दिया। उसने सबमें अपनी अमरता का अंश दिया है। **स परा अन्येन पश्यन् ईं चिकेतत्**—वह त्रिभुवन में विचरण करता हुआ, अपने दिव्य चक्षुओं से देखता हुआ सम्पूर्ण जगत् में ज्ञान और चैतन्य दे रहा है।

तू अद्भुत है तन्तुवाय, सब तेरा ही विस्तार।

ताना भी तनता है तू ही, बाना भी बुनता है तू ही,
ताना-बाना दोनों का है, तुझ पर ही आधार।

मौन सदा ही तू रहता है, बिन बोले सब कुछ कहता है,
एक चरण धरती पर तेरा, एक गगन के पार,
तू अद्भुत है तन्तुवाय, सब तेरा विस्तार।

देवता – यम ।

मृत्योः पदं योपयन्तो यदैत, द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ।
आप्यायमानाः प्रजया धनेन, शुद्धाः पूताः भवत यज्ञियासः ॥

ऋक् १०.१९.२॥

मृत्यु का रहस्य जान लेने के बाद वेद के मृत्युंजयी ऋषि मानव मात्र को मृत्यु-भय से मुक्त होने का आदेश देते हैं ।

हे मनुष्यो ! तुम '**मृत्योःपदं योपयन्तः**' मृत्यु के पैर उखाड़ते हुए '**यदैत**' आगे बढ़ोगे, तभी '**द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः**' दीर्घ आयु पाओगे, और '**प्रजया धनेन आप्यायमानाः**' प्रजा और धन से भरपूर बनोगे, किन्तु इसके लिये तुम '**शुद्धाः पूताः यज्ञियासः भवत**' शुद्ध, पवित्र और यज्ञमय जीवन बिताओ, संयम-सदाचार से रहो ।

मृत्यु के काँटे गड़े हैं हर कदम पर
जिन्दगी में पग उठाना तुम संभल कर

मौत से तुम डर न जाना
मृत्यु भय पर विजय पाना

चरण चूमेगी स्वयं श्री-सम्पदा
धान्यधन से पूर्ण होयेगी प्रजा

यज्ञमय जीवन निभाना
राह उल्टी पड़ न जाना

शुद्ध मन की भावना रखना सदा
ईश चरणों में झुके रहना सदा

देवता — परमात्मा।

परीत्य भूतानि परीत्य लोकान्,
परीत्य सर्वाः प्रदिशो दिशश्च।
उपस्थाय प्रथमजामृतस्य,
आत्मनात्मानमभि संविवेश ॥

यजु. ३२.११ ॥

जन्म-जन्मान्तरों के परिभ्रमण के बाद अन्त में अपनी ही अन्तर्मुखी श्रद्धा के प्रकाश में आत्मा को परमात्मा की समीपता मिलती है, यह अनुभव करके ऋषि संदेश देता है।

हृदयस्थ आत्मा विश्वात्मा से वियुक्त होकर न जाने कब और कहाँ भटक गया था। वियोग की उन घड़ियों में उसने '**दिशा प्रदिशो**' न जाने किन लोकों और दिशाओं में जाकर अपने वियुक्त साथी की खोज की।

खोज में उसे न जाने कितने युग बीत गये। किन्तु अज्ञानतावश उसे कहीं अपने परमदेव का परिचय न मिला।

तब उसने '**अमृतस्य प्रथमजां उपस्थाय**' केवल अपनी श्रद्धा की शरण लेकर, अपने अन्तःकरण में स्थित शाश्वत सत्य का आधार लेकर खोज की, तब उसके अन्तःचक्षु स्वयं खुल गये। एक दिव्याभा प्रकट हुई। उसी दिव्य आभा के प्रकाश में वह '**आत्मना आत्मानं अभिसंविवेश**' अपने वियुक्त विश्वात्मा के सम्मुख आ गया।

आत्म-दर्शन

मैं योनि-योनि में घूमा, मैं लोक-लोक भरमाया।
पर वियोग वेला का, अन्त नहीं हो पाया।

अब याद नहीं है मुझको, अपना ही कूल-किनारा॥
किस महासिंधु में जाकर, लय होगी जीवन धारा।

अब आज सत्य की सहसा, देखी प्रथम किरण-सी।
यह बूँद बनी जो सागर, क्षण-भर पहले थी कण-सी।

इस एक रश्मि का मैं, आश्रय पाकर पूर्ण हुआ हूँ।
अपने ही अन्दर अपने के सम्मुख मैं आज हुआ हूँ।

देवता – इन्द्रः ।

हन्तो नु किमाससे,
प्रथमं नो रथं कृधिः ।
उपमं वाजयुः श्रवः ॥

ऋक् ८. ८०. ५. ॥

पथ पर आगे बढ़ने का एक ही साधन बतलाते हुए वेद का कवि प्रभु से प्रार्थना करता है—

हे इन्द्र ! ज्ञान, ऐश्वर्य के स्वामी ! आप ही हमारे जीवन-रथ के सारथि बनो। हमारी भूल थी कि हम अपने अल्पज्ञान को ही अनन्त मान बैठे थे। अपने तुच्छ बल के गर्व में अहंकारी हो गये थे। अब हम अच्छी तरह जान गये हैं कि **'वाजयुः श्रवः'** ज्ञान और ऐश्वर्य की कामना केवल आपको अपने सब कर्मों और कर्मफल को आपके हाथों में समर्पित करके पूरी होगी।

अतः अब हे प्रभु **'किमाससे प्रथमं नो रथं कृधिः'** अब विलम्ब क्यों ? अब तो हम पूर्ण रूप से आपके ही आश्रित है। अब आप हमारे सारथी-बनिये और इस जीवन-रथ को उत्कृष्ट मार्ग पर सबसे आगे चलते हुए हमें प्रशस्त बनाइये।

सारथि

हे प्रभु अब तुम बनो सारथी,
मेरे इस जीवन-रथ के ।

मन ने बहुत मुझे भरमाया,
सीधी-उल्टी राह चलाया,

दास बनाया जिन विषयों का,
उनमें ही रह गया उलझ के ।

ले लो मेरा ज्ञान-ध्यान सब,
संसारी ऐश्वर्य मान सब,

तुम्हीं सम्भालो इस नौका को,
पार करो भवसागर से ।

देवता – इन्द्रः ।

स नः पप्रिः पारयति, स्वस्ति नावा पुरुहुतः ।
इन्द्रो विश्वा अतिद्विषः ।। ऋक् ८१.६.११.।। अथर्व – २०.४६.२. ।।

संसारी राग-द्वेषों से संघर्ष करने के बाद जब साधक को असफलता प्राप्त होती है और वह संसारी माया-जाल के भँवर में डूबने लगता है, तो वेद का दिव्य कवि उसे भवसागर से पार उतारने के लिए सबके आदि नाविक प्रभु की ओर संकेत करके आदेश देता है !

'स इन्द्रः नः पप्रिः पारयति' वह सर्वशक्तिशाली विश्व नाविक ही पूर्ण है, उसकी नौका ही हमें जीवन-सागर के पार ले जा सकती है।

क्योंकि वही दिव्य नाव है, जो पूर्णतया प्रशान्त, अविचल और अपने मार्ग की निर्देशिका स्वयं है। किसी पर निर्भर नहीं, तभी वह पूर्ण है। उसकी ही नाव है, जो **'स्वस्ति – पुरुहूतः'** सर्वदा मंगल-मयी और जन-जन के लिए करुणामयी है। सब उसका ही आह्वान करते हैं।

अन्य सभी नौकाएँ ऐसी हैं, जो स्वयं में अपूर्ण हैं। नाविकों की प्रतिभा पारदर्शिनी है, वे भी भवसागर के पार नहीं जायेंगे। क्योंकि उनके मन में करुणा नहीं है, प्राणिमात्र के लिए मंगलकामना नहीं है। उनमें विद्वेष है। उनकी नाव संसारी राग-द्वेषों की भँवरों में भटक जायेगी। केवल प्रभु की नाव ही मुझे **'विश्वा अति द्विषः'** संसारी विद्वेषों के घातक थपेड़ों से बचाकर पार ले जा सकती है।

स्वास्ति नावा

कैसे उतरे पार नाव, यदि प्रभू न तारे।
भँवरें हैं मँझधार, तेरे बिन कौन उबारे।
सागर दुर्गम गहरा पानी, माँझी मूरख नाव पुरानी।
तू ही तारे तो तारे, नाव अब–राह अजानी।
भक्ति न भावे, ज्ञान न आवे,।
कौन यहाँ जो, पथ दरसावे।
जीवन मेरा तेरे सहारे, हाथ बढ़ा रे –
कैसे उतरे पार नाव, यदि प्रभु न तारे।

देवता – अग्निः ।

> उप त्वाऽग्ने दिवे दिवे,
> दोषावस्तर्धिया वयम् ।
> नमो भरन्त एमसि ॥

ऋक्. १.१.७. ॥
साम पूर्वार्चिक ११.४. ॥

वेद का आत्मज्ञानी ऋषि सम्पूर्ण ज्ञान-विज्ञान, धर्म-कर्म को प्रभु के अर्पण करके जीवन यात्रा करता हुआ प्रभु से आत्म-निवेदन करता है –

हे अग्ने! अनन्त ज्योति स्रोत प्रभु । अब हमारी जीवन - यात्रा का केवल एक ही लक्ष्य रह गया है । – '**वयं दिवे दिवे दोषावस्तः धिया नमो भरन्तः त्वा उप एमसि**' दिन-रात के प्रत्येक प्रहर का एक-एक क्षण हमें आपके लक्ष्य तक पहुँचा रहा है । हमारे जीवन की सब पथ-वीथिकायें आपके चरणो में अर्पित होने के लिए आपके निकट ला रही हैं ।

हे प्रभु! हमारा प्रत्येक विचार और अनुष्ठान केवल आपकी अर्चना के लक्ष्य से होता है। बुद्धि से विचार करते हुए भी हम यह जानते हैं । हम केवल आपके निर्देशों का अनुकरण कर रहे हैं और कर्म करते हुए भी हमें यही अनुभव रहता है कि हम केवल आपके आदेशों को मूर्त रूप दे रहे हैं ।

नमो भरन्तः

वन्दन ही जीवन है मेरा, वन्दन पुण्य निधन है।
दिन-दिन, पलदिन, साँझ-सकारे आता मैं तेरे ही द्वारे।
मेरे श्वास-श्वास में हे प्रभु, तेरा ही स्पन्दन है।
अहोरात्र अविराम चलें नित, तुझ को शीश नवायें।
पूजा करने को तेरे ही, जीवन अर्घ्य बनायें।
कोटि-कोटि वर्षों से पथ में, बीते जन्म-मरण हैं।
वन्दन ही जीवन है मेरा, वन्दन अमृत निधन है।

देवता – वरुणः ।

> **अपां मध्ये तस्थिवांसम्,**
> **तृष्णाऽविदज्जरितारम् ।**
> **मृला सुक्षत्र मृलय ।।**

ऋग्वेद ७/८९

संसार की समस्त भोग्य सामग्री प्राप्त होने के बाद भी जब साधक की आत्मा प्यासी रह जाती है, तब वह प्रभु से करुणापूर्ण स्वर में आत्मनिवेदन करता है ।

'अपां मध्ये तस्थिवांसं जरितारं तृष्णा अविदत्' मैं भक्त अथाह जलराशि के मध्य खड़ा हूँ, फिर भी मेरी प्यास शान्त नहीं होती । वह विपुल जल मेरी प्यास बुझाने में असमर्थ है । बुझाने के स्थान पर वह उसे और भी तीव्र बना रहा है ।

संसार के सब भोग मुझे सुलभ हैं । मेरी कल्पना थी कि इस संचित भोगराशि से मुझे सुख मिलेगा । किन्तु भोग मुझे और भी तृषित बना रहे हैं ।

हे **'मृला सुक्षत्र मृलय'** सुख स्वरूप प्रभु ! मुझे सुखी करो । शक्ति दो कि मैं इस मायाजाल को तोड़कर आपकी शरण आ सकूँ । मुझे अपने आत्मिक सुख का महत्व समझने की शक्ति दो ।

अनन्त तृष्णा

हे सुधा के सिन्धु आओ,
प्यास यह मेरी बुझाओ।

सागरों के ज्वार में भी,
घनघटा बौछार में भी।

बुझ न पायी योजनों फैली
नदी की धार में भी।

बूंद-भर अमृत पिलाओ,
अमरता का पथ दिखाओ।

हे सुधा के सिन्धु आओ,
प्यास यह मेरी बुझाओ।

जगत की माया बढ़ायी,
और भी तृष्णा जगायी।

बाहरी जग ने लुभाया,
जोत अन्दर की बुझायी।

जो रहे शाश्वत हृदय में,
दीप अब ऐसा जगाओ।

हे सुधा के सिन्धु आओ,
प्यास यह मेरी बुझाओ।

दवता – आयुः ।

उद्यानं ते पुरुष नावयानं जीवातुं ते दक्षतातिं कृणोमि ।
आहि रोहेममृतं सुखं रथं, अथजिर्वि र्वेदथमावदासि ।। अथर्व ८. १. ६

मानव की उत्थान प्रिय प्रवृत्ति पर पूर्ण आस्था रखते हुए वेद का कवि पुरुषमात्र को जीवन की यात्रा के लिए आशा का अमर संदेश देता है —

हे पुरुष, **' ते उद्यानं न अवयानं '** यह मानव जीवन स्वभाव से ऊर्ध्वगामी है, उत्कर्ष मार्ग पर चलनेवाला है, अधःपतन इसकी प्रकृति में ही नहीं है।

पुरुष की यह उत्कर्ष प्रिय प्रकृति अकारण नहीं है । **' जीवातुं ते दक्षतातिं कृणोमि '** इस अदम्य जीवट के लिए विधाता ने तुझे असाधारण दक्षता दी है, मेधा से सम्पन्न किया है । उत्कर्ष के इस अभियान में यदि कभी मिथ्या अहंकार या थकानवश क्लांति प्रतीत हो, तो **' आरोह इमं अमृतं सुखं रथम् '** प्रभु के अमृत-आनंदमय रथ पर आरूढ़ होकर देवयात्रा पूरी करो । फल की चिंता छोड़कर विधि निर्दिष्ट मार्ग पर चलते चलो । कभी देह जीर्ण-शीर्ण हो जाये, तो **'जिर्विः वदथमावदासि '** ज्ञान की प्रखरता के कारण तुम ज्ञानदान देते हुए विकास के अन्तिम सोपान तक पहुँच सकोगे । दैहिक शिथिलता आने पर भी केवल ज्ञानबल और आत्मबल से विकास के अन्तिम लक्ष्य तक पहुँच जाओगे ।

पुरुषार्थ

हे पुरुष, पुरुषार्थ कर, यह धर्म है तेरा अमर।
चढ़ना तुझे है शिखर पर, हे पुरुष, पुरुषार्थ कर।
राह में रुकना नहीं तू, पाप से झुकना नहीं तू।
है दिया कौशल तुझे, विधि ने दिया यह दिव्य वर।
पुरुषार्थ कर, पुरुषार्थ कर।
भव्य तेरा देव पथ है, साथ तेरे दिव्य रथ है।
अमरता के मार्ग पर, रहना सदा ही तू प्रखर।
तू है अमर, अक्षय अजर,
पुरुषार्थ कर, पुरुषार्थ कर।

देवता – वरुण ।

उतस्वया तन्वा संवदे कदान्वन्तर्वरुणे भुवानि।
किं मे हव्यमहृणानो जुषेत, कदा मृळीकं सुमना अभिख्यम् ।।

ऋक् ७.८६.२.

विश्वात्मा में एकाकार होने की कल्पना अपूर्ण रहने पर साधक अपने मन ही में भगवान को उलाहना देते हुए कह उठता है —

हे परम सखा ! परम देव ! आपके विछोह हुए जाने कितने युग बीत गये। अब तो वह मधुर स्मृति ही मेरे हृदय में है। '**उत तत् स्वया तन्वा संवदे**' इस भरी दुनिया में भी मैं जब अकेला होता हूँ, तो आपकी स्मृति में हृदय से ही बात करने लगता हूँ, जो मेरे रोम-रोम में रमी है।

'**कदानु वरुणो अन्तः भुवानि**' मैं अपने ही अन्तर से प्रश्न करता हूँ कि क्या फिर कभी तुम्हारा साक्षात् दर्शन होगा? क्या कभी वह दिन भी आयेगा, जब मैं न केवल तुम से भेंट कर सकूँगा, बल्कि अपनापन भूलकर तुम्हारे में लीन हो सकूँगा।

मेरा संशय भीरु मन उस एकान्त में हजारों प्रश्न करता है। '**किं अहृणानः मे हव्यं जुषेत**' वह जानना चाहता है, क्या मुझे तुम्हारा प्रेमप्रसाद मिलेगा? क्या तुम्हारे पुनीत दर्शन से कभी मेरी प्यासी आँखे तृप्त हो सकेंगी?

'**सुमनाः मृडीकं अभिख्यम्**' हे प्रभु! मेरे व्याकुल मन के संदेहों को दूर करो। उसे ऐसी सान्त्वना दो कि वह निश्चिन्त होकर आपके द्वार पर आपसे साक्षात्कार कर सके।

मधुर-स्मृति

प्रभु की मधुर उठे जब याद, हो जाता ऐसा उन्माद ।
अपने में ही खोया-सा मन, अपने से करता संवाद ।
कब होगा यह यज्ञ शेष, कब कर लोगे स्वीकार प्रसाद ।
तुम में लय होने का हे प्रभु, पाऊँगा कब मैं आह्लाद ।
हे प्रभु दूर करो सब संशय, दूर करो सब मेरे भय ।
रहे आपके आश्वासन से, मेरा शान्त अधीर हृदय ।
बुझे युगों की प्यासी आँखों का अभिशप्त विषाद ।
प्रभु की मधुर उठे जब याद, हो जाता ऐसा उन्माद ।

देवता – अग्निः ।

यो अग्निं तन्वो दमे,
देवं मर्त्तः सपर्यति ।
तस्मा इद्दीदयत वसुः ॥

ऋग्वेद ८.४४.१५ ॥

अपने अन्दर की ज्योति को आत्मसमिधा से प्रदीप्त रखने का आदेश देते हुए वेद का कवि कहता है :—

यह मानव देह भगवान का निवासस्थान है। यही यज्ञशाला है। **'यः मर्त्तः तन्वो दमे देवं अग्निं सपर्यति'**— जो मनुष्य अपने हृदय-मन्दिर में बैठे आराध्य देव की अर्चना करता है, अपनी आत्मशक्ति को प्रदीप्त रखता है, **'तस्मै इत् वसुः दीदयत्'** उस आत्मवान के लिए ही भगवान् अपने समस्त वरदान देता है। जो मनुष्य स्वयं बुझे हुए मन से कर्म करेगा, उसे भगवान् के वरदान प्राप्त न होंगे।

घर का दीपक बार रे मनुवा, मन का दीपक बार।
ज्योति अन्दर की जो जागे, मिटे जगत् अँधियार।
ये तन ही तेरा मंदिर है, देवता भी तेरे अन्दर है।
अर्पण कर उसके चरणों में, भक्ति भाव उपहार।
निर्मल कर ले मन का आँगन, अपने में कर प्रभु का दर्शन।
आयेगा खुद आरति करने, सूरज तेरे द्वार।
घर का दीपक बार रे मनुवा, मन का दीपक बार।

देवता – ब्रह्म।

स एति सविता स्वर्दिव स्पृष्ठेऽवचाकशत्।
रश्मिभिर्नभ आभृतः महेन्द्र एति आवृतः ॥

अथर्व–१३.४.(१) १-२.॥

'स एति सविता' वह देखो, सविता, प्राणदायी भगवान भास्कर **'स्वर्दिव स्पृष्ठेऽवचाकशत्'** ज्योति रथ पर बैठकर आ रहे हैं। आकाश ने उनके स्वागत में अपने मस्तक पर कुंकुम लगाया है। **'रश्मिभिः र्नभ आभृतः** समस्त विश्व दिव्य–किरणों से जगमगा उठा है।

भगवान अंशुमाली की अगवानी के लिए उद्यत हो जाओ। जीवन-संग्राम में प्रस्थान करने के बिगुल बजा दो। सूर्य-किरणें तुम्हें अतुल बल का दान करेगी। सूर्य का अमृत रथ तुम्हारे साथ रहेगा। जिसका नायक सूर्य हो, वह विजयी बनेगा ही।

'महेन्द्र एति आवृतः' महेन्द्र सामान्य देवता नहीं है। सब देवों का परम-देव महेन्द्र है। वह अपनी प्राणदायिनी शक्तियों के साथ आकाश में, अपने प्राण कोश से नित्य नवीन प्राण कोश बितीर्ण करता हुआ अवतरित हो रहा है।

आओ हे महेन्द्र आओ! हे सूर्यदेवता आओ!
सारथि प्रभु के ज्योतियान के, अंशुमालि हे आओ!
नये प्राण भर दो भूतल में, नव प्रकाश भर दो जल-थल में!
भर दो धरती के आँचल में, आओ हे महेन्द्र आओ!

देवता – इन्द्रः ।

यद् द्याव इन्द्र ! ते शतं, शतं भूमीरुत स्युः
न त्वा वज्रिन् सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी।

ऋक् ८८°, ७०, ५।

विश्व पुरुष के असीम विस्तार की व्याख्या करते हुए वेद का कवि कहता है कि हम तो अभी इस एक सौरमंडल की भी थाह नहीं पा सके हैं। उस पर ब्रह्म के अनुशासन में तो ऐसी सैकड़ों भूमियाँ हैं, असंख्य सौरमंडल हैं।

'हे वज्रिन् इन्द्र यन् ते शतं द्यावः उत शतं भूमी स्युः' हे विराट पुरुष ! आपके अन्तर में तो ऐसे शतशत अन्तरिक्ष भी समाये हुए हैं। ये व्यापक अन्तरिक्ष भी **'त्वा न अनुअष्ट'** तुझे अपने में व्याप्त नहीं कर पाते।

'जातं रोदसी न अनु अष्ट' ये विशाल द्यावा पृथिवी, जितने भी हमारे ज्ञान में व्यक्त हो चुके हैं – वे सब भी आप में व्याप्त है। आप इनसे भी विराट हैं, विशाल हैं। हे विश्व पुरुष ! हमारी दृष्टि ही नहीं, हमारी ज्ञान क्षमता भी आपके अनन्त का पार नहीं पा सकती।

अतुलनीय

तुझ-सा तू ही है भगवान।
कोई तेरे नहीं समान।

एक सूर्य ही नहीं सहस्रों–
मिलकर भी ना तेरे सम हों।
शतशत पृथ्वी नभ विशाल भी -
पा न सकें तेरा परिमाण।

तुझ-सा तू ही है भगवान।
सब लोकों के ग्रह-उपग्रह भी
तुल्य नहीं होते मिलकर भी
तेरी थाह नहीं पाते हैं
तेरे बीच समा जाते हैं।

हे विराट, सीमा नहिं तेरी
तेरा नहीं कोई परिमाण
तेरा नहीं कोई उपमान
तुझ-सा तू ही है भगवान।

देवता – पवमानः सोमः।

एषस्य धारयासुतो—अव्या वारेभिः पवते मदिन्तमः।
क्रीड न्नूर्मिरपामिव ।। सामवेद पूर्वार्चिक ६.९.७.।।

विश्व के असीम सोम सागर – प्राणों के अनन्त प्रवाह को देखकर वेद का ऋषि स्वयं उसी मदभरे सुरोवर में डूबकर कहता है:—

'एषः स्यः मदिन्तमः धारया सुतः' प्रभु की यह अत्यन्त मदभरी सोमसुधा जगत् की असंख्य धाराओं में बह उठी है। विश्व के कण-कण में उसका रोमांच प्रकट हो रहा है।

उसी अमृत कण को पीकर सूर्य, चन्द्र और अन्तरिक्ष निरन्तर क्रीड़ा कर रहे हैं और उसी अजस्रवाहिनी सुधा-धारा का पान करके पृथिवी की वनस्पतियाँ फूलों के रूप में अपना उल्लास प्रकट कर रही हैं।

'अपां उर्मिः इव क्रीडन् अव्या वारेभिः पवते' मानव हृदय की सब भावनाएँ भी पानी की तरंगो की तरह खेलती हुई उसी दिव्य पियूष का पान करके अनुप्राणित होती हैं। इस दिव्य अमृत की एक बूंद भी जीवन को पवित्र आनंद और उल्लास से पूर्ण कर देने को पर्याप्त हैं।

सोम ज्वार

मदभरी तेरी सुधा की,
धार बहती निर्झरों में ।
भावनाओं की तरंगें,
खेलती मन के स्वरों में ।

बादलों से दिव्य तेरा,
सोम अमृत झर रहा है ।
सूर्य किरणों से धरा के,
प्राण पुलकित कर रहा है ।

मदभरा आनन्द उठता
ज्वार बनकर सागरों में ।

पंख खोले पवन उड़ता ।
जा रहा लोकान्तरों में ।
विश्व रोमांचित हुआ है ।
सोम के ही स्पर्श से ।

दिव्य स्वर से गीत गातीं ।
सब दिशाएँ हर्ष से ।
मदभरी तेरी सुधा की,
धार बहती निर्झरों में

देवता—अग्निः ।

> यदग्नेस्यामहं त्वं,
> त्वंवा घा स्या अहम् ।
> स्युष्टे सत्या इहाशिषः ॥

ऋक् ८ ४४.२३.

विश्वात्मा से परम अनुकूलता अनुमत्र होने के उपरान्त वेद का आद्य ऋषि प्रभु में पूर्णतया समाहित होने का आशिष माँगता है ।

हे परम ज्योतिर्मय अग्ने ! अभी तक आपकी अनुकम्पा से मेरा कर्ममय जीवन पूर्णतः प्रशस्त रहा है ।

अब मैं आपके द्वार पर अन्तिम आशिष लेने की कामना से आया हूँ, **'यत् अहं त्वं स्याम्'** कि मैं सर्वांश में आपका रूप ग्रहण कर लूँ, आपकी ज्योति में विलीन हो जाऊँ ।

और **'त्वं अहं स्याः'** तुम मेरे सदृश हो जाओ । दोनों अभिन्न हो जायें । इस पूर्ण मिलन में ही **'ते आशिषः सत्या स्युः'** अब तेरे आशीर्वादों की सत्यता होगी । यह पूर्ण मिलन ही मेरे जीवन का, मेरी प्रार्थनाओं का चरम लक्ष्य है ।

आशिष दे

आशिष दे प्रभु यह आशिष दे, मिटे अहं का विष मन से

तेरा अक्षय वैभव पाकर अहंकार से हृदय भरा।
इस झूठे अभिमान भाव से तेरा-मेरा भेद भरा।

इसे दूर कर दो प्रभु अब फिर तू मैं, मैं तू हो जाऊँ।
मैं न रहूँ, तू ही बस तू हो, तुझ में ही मैं खो जाऊँ।

तेरे आशीर्वाद सत्य हों, सबको अपना-सा जानूँ।
तेरे रूप भरे नैनों में सब में तुझ को पहचानूँ।

आशिष दे प्रभु यह आशिष दे, मिटे अहं का विष मन से

देवता – इन्द्रः।

मा त्वा मूरा अविष्यवो,
मो पहस्वान् आदभन्।
मा कीं ब्रह्मद्विषो वनः॥

ऋक् – ८,४५,२३॥ साम – ३०,१,२,७.॥

आस्थाहीन, दम्भी और दुर्जन व्यक्तियो की संगति से दूर रहने का संकल्प करते हुए वेद का ऋषि स्वयं अपने मन को दृढ़ करता है :–

हे मेरे मन! तुझ पर कितने ही संकट आ जायें, सब संसारी अभावो में घिर जाये, मृत्यु का भय भी सामने खड़ा हो, फिर भी तू **'मूरा अविष्यवः मा दभन्'** ऐसे व्यक्तियों का दासत्व स्वीकार न करना, जो नास्तिक और अविश्वासी हों। ईश्वरीय भय को न माननेवाला व्यक्ति केवल मूर्ख ही न होगा, बल्कि नृशंस-निष्करुण भी होगा। स्वार्थ से अन्धा होकर वह न्याय-अन्याय की परवाह नहीं कर सकेगा। उसकी नीयत केवल तेरा शोषण करने की होगी।

ऐसे दम्भी व्यक्ति का हृदय सदा सहानुभूति शून्य रहेगा। दूसरे की भावनाओं का उपहास करना और उन्हें तुच्छ मानकर उनकी अवहेलना करना ही ऐसे स्वार्थान्ध व्यक्तियो का खेल है। इस खेल-खेल में ही वह अपने आश्रितों के जीवन को नष्ट कर देते हैं। हे मन! भूल से भी ऐसे **'उपहस्वानः ब्रह्म द्विषः'** स्वार्थी-लोभी व्यक्तियों के **'मा कीं वनः'** कुचक्र में न पड़ना।

संकल्प

भीरु, अधम जन संग त्याग कर,
शुभ पावन संकल्प ग्रहण कर।
लक्ष्य प्राप्ति के लिए बढ़ा चल,
प्रभु मंजिल की ओर निरन्तर।

हे मेरे मन! तू एकाकी,
बढ़ते जाना देव पन्थ पर।
रुक मत जाना बीच राह में,
पौरुष खोकर, साहस तजकर।

देखो कहीं लौट मत आना,
डरकर अगणित बाधाओं से
देखो, कहीं न विचलित होना,
जग की कुत्सित निन्दाओं से।

देवता – कामः ।

दूराच्चकमानाय प्रतिपाणाय अक्षये
आस्माः अश्रृण्वन्नाशाः कामेनाजनयन्स्वः ।

अथर्व १९. ५२. ३.

विश्व की प्रचंड देवशक्तियों से भयभीत होकर वेद का विनयशील कवि जब अकस्मात् प्रभु का यथेष्ट वरदान पा जाता है, तो भावविभोर होकर पुकार उठता है ।

हे प्रभु ! आपने तो विलक्षण अनुकम्पा और दानशीलता का वरदान दे दिया । मैंने तो **'दूरात् चकमानाय'** दूर-दूर से ही बड़े संकोच के साथ केवल **'अक्षये प्रतिपाणाय'** चिर सुरक्षा की भीख माँगने को हाथ बढ़ाया था । मुझे आपकी विश्व-शक्तियाँ आतंकित कर रही थीं ।

किन्तु मेरी अत्यन्त शंकाकुल मन से की गयी प्रार्थना को भी **'आस्माः आशाः अश्रृण्वन्'** चतुर्दिक दिशा-दिशान्त ने सुन लिया । मुझे भय था कि मेरी आतुर वाणी आपके कानों तक नहीं पहुँचेगी, अथवा आप उस निर्बल वाणी की उपेक्षा कर देंगे ।

किन्तु मेरी वाणी के कातर स्वरों को सभी दिशाओं ने सुन लिया । और अकस्मात् ही **'कामेन स्वः अजनयन्'** विपुल सुख की वर्षा होने लगी । सुख की धारायें-सी बह उठीं ।

अमृत वर्षा

हम कितने नादान बने थे
कितने थे नादान।
प्रभु की महिमा देख डर गये,
विनय सुनेंगे क्या भगवान्?

दूर-दूर से विनय किया था,
मन में पर यह प्रश्न बना था
क्या त्रिलोक स्वामी है सम्भव
तुम सुन पाओ हृदय-व्यथा?

किन्तु हमारी मनोकामना
सुनी आपने द्रवित हुए।
दशों दिशाओं से करुणा के
बादल उमड़े स्रवित हुए।

एक बूँद मैंने माँगी थी
अमृत की धारा बरसाई।
पृथ्वी - नभ के देवगणों ने
करुणा अविरल दिखलाई।

वसुन्धरा ने गोद खिलाया
दिया अमित धन-धाम?
हम कितने नादान बने थे
कितने थे नादान।

देवता – इन्द्रः ।

> **केतुं कृण्वन्नकेतवे,**
> **पेशो मर्या अपेशसे ।**
> **समुषद्भिः अजायथाः ॥** ऋकृ० १.६.३. ॥

गहन अन्धकार भरी रात्रि के बाद जब आकाश मे **नयी** चैतन्यता के दर्शन होते हैं, तो अनायास आदि-शक्ति के चरणों में नतशिर ऋषि पुकार उठता है :—

हे इन्द्र ! उषा की अरुणाभ किरणो मे आपकी ही चैतन्य-शक्ति है। जो '**अकेतवे केतुं कृण्वन्**' जगत् के सोये सौन्दर्य को जगाती है और '**पेशो मर्या अपेशसे**' मौन जगत को मधुर गीतो से तथा मिट्टी के निर्जीव आकारों को सुगंध और स्वर से भर देती है।

उषा किरण के एक स्पर्श से समस्त जगत् प्राणवान् हो जाता है। एवं '**समुषद्भिः अजायथा**' उषा के उदय के साथ जाग्रत ज्ञान द्वारा हमारी दृष्टि में वह प्रखरता आ जाती है कि हम सब वस्तुओं की चैतन्यता का दर्शन कर सकते हैं।

उषा संग

उषा संग जागा जग सारा,
जगा जगत् में उजियारा ।

अरुणाई छा गयी गगन में;
जगे प्राण कण-कण में ।
किरणों के झूलों पर उतरी
दिव्य स्वरों की धारा ।
जगा जगत् में उजियारा ।

फूलों में नव रंग आ गया
माटी में चैतन्य भरा
भरी नशीली गंध पवन में
अम्बर में सौन्दर्य भरा ।
अन्तर में प्रज्ञान सूर्य की,
प्रथम किरण का हुआ उदय ।

प्राणों में सुर जगे ज्ञान के,
भरें दिव्य स्वर लय ।
वही सतत् जीवन धारा
जगा जगत् में उजियारा ।

देवता – अग्निः ।

अग्नि मन्द्रं पुरु प्रियं, शीरं पावकशोचिषम् ।
हृद्भिः मन्द्रेभिरीमहे ॥ ऋक् ५.४३.३१ ॥

आनन्दमय प्रभु के साहचर्य से पुलकित ऋषि उसी सात्विक आनन्द की अनुभूति को शाश्वत रखने की कामना से पुकार उठता है --

आज हमारा स्वप्न पूरा हो गया। आज '**पावकशोचिषम् अग्निं**' पवित्र ज्योति के दर्शन कर लिये, जिसे देखने को हमारी आँखे प्यासी थीं, जिसे पाने को हम लालायित थे। जन्म-जन्म से हमने उस '**पुरुप्रियं शीरं**' अत्यंत प्रिय, मधुर तथा दिव्य ज्योति के दर्शन कर लिये। उसकी शान्त शिखा में विचित्र शीतलता है। वह ऐसा दीपक है, जो केवल प्रकाश देता है, ताप नहीं।

सम्पूर्ण विश्व के सौन्दर्य में उसकी मधुर आभा व्यक्त हो रही है। हमारे हृदय ने आज उसका रहस्यमय स्पर्श अनुभव किया है।

अब हम उस प्रसुप्त ज्योति से एक क्षण के लिए भी अलग नहीं होंगे। उसकी एक झलक में ही हमारी जन्म-जन्मान्तरों की थकान मिट गयी है। मन में आनन्द का मधुर नशा छा गया है। अब हम '**मन्द्रेभिः हृद्भिः ईमहे**' सदा उस दिव्य आनन्द की अनुभूति के साथ परम पुनीत प्रियतम की अन्तःकरण में विराजित प्रतिभा की ही एकनिष्ठ आराधना करते रहेंगे।

शीतल शिखा

मेरा मधुर मदिर मन निशिदिन,
करता है तेरा पूजन।

खोया जैसे कोई सपना,
मन की गहराई में अपना।

ऐसे प्रिय की छबि को देखे,
परछाई में अपना मन।

मेरा मधुर मदिर मन निशिदिन,
करता है तेरा पूजन।

उसकी दीप शिखा शीतल है।
उसकी ज्वाला शान्त विमल है,
उसके दिव्य रूप का दर्शन,
ही जीवन का आराधन

मेरा मधुर मदिर मन निशिदिन,
करता है तेरा पूजन।

देवता – इन्द्रः ।

न घेमन्यत् आपपन, वज्रिन् अपसौ न विष्टौ
तवेदु स्तोमं चिकेत ॥

ऋक् ८–२. १७ ॥

हे **'वज्रिन्'** सर्व समर्थ प्रभु ! **'न अन्यत् आपपन्'** मैं आपके अतिरिक्त अन्य किसी को भी नहीं जानता । जो करता हूँ, आपका नाम लेकर करता हूँ । आपके लिए करता हूँ । **'अपसौ न विष्टौ'** जिस कर्म के प्रारम्भ में **'तव इत् उस्तोमं'** आपका ही स्मरण करता हूँ, वही सुख देता है । जो काम मै अपनी प्रभुता के लिए करता हूँ, वही दुःख का कारण बन जाता है ।

किसी भी विशेष लाभ की आशा से प्रारम्भ किये कार्य से मुझे पूर्ण तृप्ति नहीं मिलती । क्योंकि आकांक्षा का रूप बहुत प्रवंचनात्मक है । उससे मैं ठगा जाता हूँ, अतृप्त रह जाता हूँ । यह अतृप्ति मन में पराजय की दुर्भावना भर देती है । जीवन में मैं थकाहारा अनुभव करता हूँ ।

इसलिए अब आपके प्रति समर्पित होकर ही मैं प्रत्येक कार्य प्रारम्भ करूँगा ।

समर्पित

आदि करूँ सब कर्मों का मैं,
लेकर तेरा नाम सदा।

अपने संकल्पों से पहले,
तेरा नाम लिया मैंने
तेरी अनुमति पाने को ही,
तेरा स्मरण किया मैंने।

जीत-हार होती जो होवे
मन में यह संतोष रहे।
तूने जो आदेश दिया प्रभु !
वही किया, परितोष रहे।

तुझे समर्पित रही जिन्दगी
स्वयं सदा निष्काम रहा।
रहा न मेरा कुछ भी अपना
तेरा पावन नाम रहा।

आदि करूँ सब कर्मों का मैं
लेकर तेरा नाम सदा।

देवता — ऋषिः ।
प्राग्नये वाचमीरय, वृषभाय क्षितीनाम् ।
स नः पर्षद् अतिद्विषः । ऋक् – १०. १८७. १. ॥

वाणी का अप्रतिम महत्व जानने के बाद वैदिक ऋषि भगवान् से ओजस्विनी और मंगलदायिनी वाणी देने की विनति करता है ।

हे जातवेदस प्रभु ! **'क्षितीनां वृषभाय अग्नये वाचं ईरय'** हमारी वाणी में ऐसी ओजस्विनी प्रेरणा दो कि वह मानव मात्र के लिए कल्याण की वर्षा करे । हमारी वाणी में अनन्त शक्ति है । वह चाहे तो सृष्टि की शक्तियों का संहार कर दे और चाहे तो सबके मन में प्रेम और मंगल की तीव्र इच्छा जगा दे ।

हे कल्याणमय प्रभु ! हमारी वाणी जगत की कल्याण साधना में सहायक हो, यही कामना है हमारी ।

'स नः द्विषः अतिपर्षद' वह हमें द्वेषों से पार कर दे । अभी तक परस्पर विद्वेष की अग्नि को उत्तेजित करने के उद्देश्य से ही हम वाणी को प्रकर्ष बनाते हैं । हमारे विष-भरे शब्दों से सम्पूर्ण विश्व में सन्देह और संहार का वातावरण बना रहता है । हे प्रभु ! उसे सदा मंगल-कामिनी बनाओ, तभी हम इस द्वेष-भरे भवसागर के पार जा सकेंगे । और विश्व में प्रेम का साम्राज्य बनेगा ।

मंगल गान

आओ गायें मंगल गान।
जिसकी महिमा देख अचम्भित विश्व मौन, मानो निष्प्राण।
अर्धचेतना अर्धज्ञान में शिशु-सा बनकर के अनजान॥
आओ गायें उसका गान।
जो देता केवल देता है, सबकी नाव सदा खेता है॥
जिसके स्मरण मात्र से सारे द्वेषों का होता अवसान॥
आओ गायें उसका गान।
जिसका अमृतमय जल पीकर, ज्योतिर्मय रविचन्द्र दिवाकर
महामहिम उस वृषभ अग्नि से ही सब पाते हैं हम प्राण॥
आओ गायें उसका गान

देवता – पवमानः सोमः ।

परीतो षिञ्चता सुतं सोमो य उत्तमं हविः ।
दधन्वान् यो नर्यो अप्स्वन्तरा, सुषाव सोममद्रिभिः ॥

सामवेद पूर्वार्चिक ६,३,२ ।

द्युलोक में व्याप्त पवमान सोम में अभिषिक्त होने की कामना करते हुए ऋषि विनति करता है:—

हे प्रभु, हम **'सोमः यः उत्तमं हविः'** अनन्त सौन्दर्यशाली सूक्ष्म शरीर में व्याप्त आनन्दप्रद अमृत सोम की कामना करते हैं।

आपके ही वरद आत्मज होने से हम भी अमृतपुत्र हैं। इसलिए हे सोम के अधीश्वर, अपने सरस प्रवाह से **'सुतं परिषिञ्चत'** अपने अमृत-पुत्रों का अभिषेक होने दो। आपके अनन्त सोम सागर अपनी सोम-सुधा से मानव का अभिषेक करें और आकाश के सजल मेघ अपने कलश भरकर मानव की पिपासा शान्त करें।

हम **'नर्यः अप्सु अन्तः दधन्वान्'** मानव अपने पुरुषार्थ के बल पर अथाह समुद्र में डुबकी लगाकर सोम की उपलब्धि करें और **'अद्रिभिः सोमम् आसुषाव'** नभ-विहारी मेघों के संग उड़कर नभोमण्डल के सोम का पान करें।

हे विश्वपति अब आप स्वयं अपने यज्ञावशेष सोम से हमारा अभिषेक करें, तभी हमारा पुरुषार्थ सफल होगा।

राजतिलक

मानव बना आज युवराज।
राजतिलक करने को तेरा,
सूर्य-चन्द्र लाये हैं ताज।

नभ में मेघ सजल घिर आये,
वसुन्धरा पर सागर।
करने को अभिषेक तुम्हारा,
लाये अमृत घट भरकर।

मणि-मुक्ता से जटित गगन में
तारकगण का ताज।
प्रभु का पावन स्नेह जलाशय
कर ले उसमें स्नान अबाध।

वरद पुत्र ईश्वर का तू है
कर ले अमित सुधा का पान
अमृतमय त्रैलोक्य राज्य का
प्रभु देते हैं दान।

अपने हाथों तिलक लगाया
प्रभु ने तेरे आज।
मानव बना आज युवराज।

देवता — आत्मा।

न देवानामतिव्रतं शतात्मा च न जीवति
तथायुजा वि वावृते ॥ ऋक् १०.३३.९।

जीवन में नियंत्रण और निष्ठा के महत्व की व्याख्या करते हुए वेद का तत्वज्ञ ऋषि मनुष्य मात्र को सावधान करता है कि वे अपने निर्धारित कर्तव्य पथ पर चलते हुए अपने व्रतों का पालन करते रहें।

सम्पूर्ण देवशक्तियाँ अपने निर्धारित पथ पर चल रही हैं, अपने व्रतों का पालन कर रही हैं। सबके गुण धर्म निश्चित हैं, उनमें कोई अपवाद सम्भव नहीं है। सूर्य-चन्द्र और तारे सब अपने निर्धारित व्रत का पालन कर रहे हैं। इस व्रत पालन के मार्ग में यदि कोई मानव बाधक बनेगा, तो नष्ट हो जायेगा।

मानव अपने आत्मबल के आधार पर भी देवशक्तियों के व्रत में परिवर्तन नहीं कर सकता। किसी साधक ने कितने ही महान् आत्मबल का संचय किया हो, '**देवानां अतिव्रतं शतात्मा च न जीवति**' देव-शक्तियों के विरोध में रहनेवाला शतात्मा भी नष्ट हो जाता है। यदि वह प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन करेगा, तो '**युजा विवावृते**' उसे कठिन-से-कठिन दंड मिलेगा, वह जीवन से हाथ धो बैठेगा। उसके सब सांसारिक संयोग समाप्त हो जायेंगे।

अनुशासन

सूर्य-चन्द्र नभ पवन अग्नि जल विद्युत्-किरण शक्ति तारे।
उसी नियन्ता के नियमों में बँधे चल रहे हैं सारे।

अटल नियम हैं इन देवों के, इन्हें तोड़ना है न सरल।
स्वयं मिटे जो इन्हें मिटाये, हो वह कितना क्यों न सबल।

नियम और बन्धन में प्रभु के निहित हुआ है जग-कल्याण।
इनका करके अतिक्रमण नर, पा सकता न कहीं भी त्राण।

आत्म-शक्ति का अमित बली भी, देव-शक्तियों से हारे।
इन नियमों से बँधे हुए हैं, प्रभु के अग...जग सारे।

देवता — रात्रिः ।

रात्रिमातरुषसे नः परिदेहि,
उषा नो अन्हे परिददातु,
अहस्तुभ्यं विभावरि ।

अथर्व १९.४५.२

थके-हारे मानव को गोद में सुलानेवाली रात्रि में माता का वात्सल्य अनुभव करते हुए वेद का भावनाप्रिय कवि निवेदन करता है –

हे **'रात्रि मातः उषसे नः परिदेहि'** हे रात माँ, तेरी गोद में विश्राम करने के बाद जब हम आँखें खोलें, तो हमें उसी ममता के साथ उषा के आँचल में दे देना, जिस ममता से तूने हमें अपराह्न में अपनी गोद में लिया था।

सूर्य की प्रथम किरण-स्पर्श से चैतन्यता पाने के बाद, **'उषा नो अन्हे परिददातु'** उषा हमें मध्याह्न के सूर्य को, कर्मक्षेत्र में विकास पाने के लिए समर्पित कर दे ।

और जब कर्मक्षेत्र के संघर्षों से थककर हमारा शरीर विश्रांति की कामना करे, तो **'अहस्तुभ्यं विभावरि'** हे विभावरि ! माँ रात्रि ! सूर्य से कहना कि वह हमें तेरे पालने में सुला दे । हम सदा माँ की गोद में झूलते रहें, सभी देवता हमें माँ का प्यार देते रहें । तभी यह जीवन-यात्रा सुखद होगी । विश्वमाता की गोद में झूलते हुए हम अपनी यात्रा पूर्ण करें ।

रात्रि माँ !

रात्रि माँ ममतामयी आ।

गोद में मुझको उठा,
लोरियाँ मुझको सुना,
पालने में फिर झुला।
रात्रि माँ ममतामयी आ।

सुबह जब आये उषा, मैं
सूर्य से नवप्राण पाऊँ।
कर्म में मैं जूझ जाऊँ।
प्रखर यश अपना बढ़ाऊँ
शिखर के ऊपर चढ़ा।

रात्रि माँ ममतामयी आ।
गोद में मुझको उठा।
हे विभावरि माँ थकूँ जब,

तू मुझे देना शरण
गोद में ही जन्म मेरा,
गोद में तेरी मरण।

हर समय पाता रहूँ
आशीस तेरे प्यार की
रात्रि माँ ममतामयी आ।

देवता – द्यावा पृथिव्यौ ।

इदमुच्छ्रेयो अवसानमागां, शिवे मे द्यावापृथिवी अभूताम् ।
असपत्नाः मे प्रदिशो भवन्तु, न वै त्वा द्विष्मो अभयं नो अस्तु ।।

अथर्व – १९.१४.१. ।।

संघर्षमय जीवन से विश्रान्ति पाकर, विश्व की दैवी शक्तियों से अभय याचना करते हुए पूर्णतः समर्पित वैदिक ऋषि पुकारता है —

'इदम उत् श्रेयः अवसानम् आगाम्' अब तो यही भला लगता है कि मैं अब जीवन के सब संघर्षों का अन्त कर दूँ। मेरी कामनायें शान्त हो जायें।

इस जीवन-यज्ञ में मैंने अपने दायित्व को निभाने के लिए सभी प्रकार के संघर्ष किये हैं। किन्तु अब विराम की अन्तःप्रेरणा आ गयी है।

'शिवे मे द्यावा पृथिवी अभूताम्' अब मेरा कल्याण भगवान की समस्त अन्तरिक्ष व्यापिनी शक्तियाँ स्वयं करें। मैंने कभी किसी से द्वेष नहीं किया, सबसे मित्रवत् निभाया है। आकाश और पृथ्वी के सब प्राणियों से मैंने प्रेम किया। सभी के प्रति आदर भाव रखा।

'असपत्नाः मे प्रदिशो भवन्तु' अब असीम दृष्टि के दिशा-दिशान्तर मेरा मंगल मनायें।

'न वै त्वा द्विष्मो अभयं नो अस्तु' मुझे सभी से अभय पाना है। अपने जीवन के शेष दिनों में मैं पूर्ण शान्ति और मंगल चाहता हूँ। न मैं किसी से द्वेष करता हूँ और न किसी के द्वेष से भयभीत होता हूँ।

वरदान

प्रभु मेरे दे दो यह वरदान, सबका हो कल्याण।
अब तो केवल यही श्रेय है, सबका मंगल सतत प्रेय है,
जीवन की सन्ध्या बेला में, वैरभाव का हो अवसान।
प्रभु मेरे दे दो यह वरदान।

पृथ्वी-नभ के सभी देवता, पूरब-पश्चिम दिशा-दिशा,
सदा दयालु रहें मानव पर, करें सदा कल्याण।
प्रभु मेरे दे दो यह वरदान।

मन की तृष्णा मिट जाये, बैर-विरोध भाव हट जाये,
सभी देवताओं से हर पल, मिले अभय वरदान।
प्रभु मेरे दे दो यह वरदान।

देवता – वरुणः ।

> **मोषु वरुण ! मृण्मयं, गृहं राजन्नहं गमम् ।**
> **मृला सुक्षत्र मृलय ॥**

ऋग्वेद ७।८९

भौतिक देह की क्षणभंगुरता अनुभव करने के बाद **विरक्त ऋषि** उस विरक्ति को स्थायी बनाकर आत्मिक सुख की कामना से प्रार्थना करता है –

हे प्रजापति वरुण ! हे जीवनदायी प्रभु ! आपने मुझे पाँच तत्वों का सुन्दर देह दिया, जिसमें संसारी सुखों के भोग की अतुल क्षमता भर दी । इस उपकार के लिए मैं कृतज्ञ हूँ ।

किन्तु हे दानी ! **'अहं मृण्मयं मा ऊषुः'** कहीं मैं फिर मिट्टी के इस पात्र को ही सुख का स्रोत न समझ लूँ। और इसके साज-सिंगार में ही जीवन की सम्पूर्ण शक्ति का व्यय कर दूँ।

हे **'मृला सुक्षत्र मृलय'** सुख स्वरूप वरुण ! मेरे मिट्टी के घर में अपने अमर प्रकाश का दीपक जलाओ । उस प्रकाश में ही मुझे सुख का सच्चा मार्ग दिखलाई देगा ।
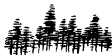
अमृत पात्र

आओ हे आनन्दमय, आओ वरुण वर दो।
बन्धनों से जड़ जगत् के, मुक्त मन कर दो।

मृत्तिका के पात्र में, तुमने अमरता थी भरी।
मृत्तिका की ही पुजारिन, बन गयी मैं बावरी।

ज्ञान का दीपक जलाकर, मोह मेरा प्रभु हरो।
हे सुधा के सिन्धु, मन में शान्ति शाश्वत अब भरो।

देवता – आत्मा।

य आत्मदा बलदा, यस्य विश्व उपासते।
प्रशिषं यस्य देवा, यस्य छाया अमृतम् यस्य मृत्यु।
कस्मै देवाय हविषा विधेम।

यजु० २५, १३ ॥

'**यः प्रभुः आत्मदा बलदा**' जो प्रभु आत्मबल का अक्षय स्रोत है; '**यस्य विश्व उपासते**' जिसकी उपासना में सारा विश्व तल्लीन है; '**प्रशिषं यस्य देवाः**' देव-शक्तियाँ विशेष रूप से जिसका कार्य करती हैं, '**कस्मै देवाय हविषा विधेम**' उस देवता को ही हम जीवन अर्पित करते हैं।

आदि शक्ति जो प्राण प्रसू है, आत्मवन्त बलशील महान।
जिसकी छाया में अमृत है, जीवन-मृत्यु एक समान।
जिसके आराधन में सारे, देव अतुल बल पाते हैं।
उसी देवता के चरणों में, हम सब हविष चढ़ाते हैं।

देवता – आत्मा।

> **येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्,**
> **परिगृहीतममृते न सर्वम् ॥**
> **येन यज्ञस्तायते सप्त होता।**
> **कस्मै देवाय हविषा विधेम।**
>
> यजु० ३४, २३ ॥

'**येन, अमृतेन इदं भूतं भुवनं, भविष्यत् परिगृहीतम्**' जिसके अमृत में वर्तमान, भूत और भविष्यत् – सब कालों का क्रियाशील जगत् परिव्याप्त है; '**येन यज्ञस्तायते सप्त होता**' जिस अमृत की आहुति से सर्वेंद्रियों का यज्ञ चलता है, उस सच्चिदानन्द को हम अपना जीवन अर्पित करते हैं।

जिसके अमृत घट में डूबे, भूत-भविष्यत-वर्तमान हैं।
जिसकी यज्ञ वेदि में सारे भुवन अकिंचन तृण समान हैं।
जिसकी ज्वालाओं में तपकर, प्राणी जीवन पाते हैं।
उसी देवता के चरणों में हम सब हविष चढ़ाते हैं।

देवता – आत्मा ।

> येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढ़ा ।
> येन स्वस्तमितं येन नाकः ।
> येनान्तरिक्षं रजसो व्योम्नः
> कस्मै देवाय हविषा विधेम ।
>
> यजु० ३२, ६ ॥

'येन उग्रा दृढ़ा पृथिवी द्यौ, च स्तमितं' जिसने विस्तृत आकाश, दृढ़ पृथिवी और अन्तरिक्ष की स्थिति स्थिर की है। **'यस्यान्तरिक्षं रजसो व्योम्नः'** और जिसकी विलक्षण शक्तियों से पृथिवी नभ के देवता गतिशील हैं, हम उस देवता को जीवन अर्पित करते हैं।

> जिसने नभ विशाल पृथिवी को, अन्तरिक्ष को प्राण दिये।
> जिसने अपनी दिव्याभा से, रवि-शशि ज्योतिर्मान किये।
> जिसके एक चरण में त्रिभुवन, और त्रिकाल समाते हैं।
> उसी देवता के चरणों में, हम सब हविष चढ़ाते हैं।

देवता—अग्निः ।

यदंगदाशुषे अग्ने भद्रं करिष्यसि तवेतत्सत्यमंगिरः ।।

ऋक् १. १. ६ ।।

मन के संशय छोड़ के सारे
आया तेरे द्वार,
ईश्वर ! आया तेरे द्वार ।

यह तन अब तेरा ही धन है
वन्दन ही मेरा जीवन है
अरपन है तेरे चरणों में
मेरा सब संसार ।
ईश्वर ! आया तेरे द्वार ॥

कैसा अचरज तेरी माया
देनेवालों ने ही पाया
मेरी झोली खाली दाता
तेरे हाथ हजार ।
ईश्वर ! आया तेरे द्वार ॥

मन के संशय छोड़ के सारे
आया तेरे द्वार
ईश्वर ! आया तेरे द्वार ।

देवता – आत्मा ।

सहस्राह्ण्यं वियतावस्य पक्षौ, हरे र्हंसस्य पततः स्वर्गम् ।
स देवान्सर्वानुरस्यु पदद्य, संपश्यन् याति भुवनानि विश्वा ॥

अथर्व – १०. ८. १८. ॥

संसार विरक्त हंस रूपी जीवात्मा जगत के समस्त ज्ञान-विज्ञान को हृदयंगम करके भी किस अज्ञात देवता की खोज में उड़ता रहता है ? इस चिरन्तन प्रश्न का उत्तर वैदिक ऋचा देती है :—

हमारी इस जीवन-यात्रा का लक्ष्य केवल विश्वात्मा की खोज है । लाखों वर्षों से यह खोज चल रही है । हमारा हंस हृदयस्थ आत्मा '**स्वर्गं पततः अस्य हरेः हंसस्य पक्षौ सहस्राण्यं वियुतौ**' अनन्त काल से यह यात्रा कर रहा है । उसके पंख कभी बन्द नहीं होते । अपने ज्ञान और कर्म के पंख खोलकर वह देवलोक की यात्रा में सदैव उड़ता ही रहता है ।

सभी देवता इस देव यात्रा में उसकी सहायता करते हैं । अग्नि-वायु-आकाश अपनी शक्तियों से उसे समर्थ बनाते हैं । संसार के सब भोग उसे सहज ही प्राप्त हैं । वह हंस '**सर्वान् देवान् उरसि उपदद्य**' इन सबका आस्वाद लेता है ।

किन्तु इस भोग से भी उसे सन्तोष नहीं होता । उसकी जिज्ञासा शान्त नहीं होती ।

इन्द्रियों से सब देखता हुआ भी वह हंस '**विश्वा भुवनानि संपश्यन् याति**' मन से ऊपर उड़ताही रहता है । उस विश्वात्मा की खोज में कल्पना के पंख खोले विश्व के सब लोकों के अनन्त नीलाकाश में उड़ता रहता है ।

परम हंस

उड़ रहा है हंस मेरा - उड़ रहा है।
युग-युगों से पंख खोले, खोजता अपना बसेरा।
हंस मेरा उड़ रहा है - उड़ रहा है हंस मेरा।
देवताओं का हृदय में धारकर वरदान भी।
विश्व के सब ज्ञानियों से सीखकर विज्ञान भी।
उड़ रहा बेचैन होकर तीन लोकों का चितेरा।
हंस मेरा उड़ रहा है-उड़ रहा है हंस मेरा।
उड़ रहा है और उड़ता जा रहा अविराम है।
देखता लीला जगत की भोग से उपराम है।
जा रहा है पिय-मिलन को नील नभ में वह अकेला।
हंस मेरा उड़ रहा है-उड़ रहा है हंस मेरा।

देवता – का !

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा, यस्य समुद्रं रसया सहाहुः,
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू, कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।

ऋक् – १०. १२१. ४. ।।
यजु: – २५, १२.

आत्मभाव में पूर्णतः लीन हुए ऋषि को जब जगत् की समस्त महिमामय विभूतियों में परमदेव की अनुभूति हुई, तब वह अनायास पुकार उठा –

हम भी उसी आनन्दमय परमदेव के चरणो में अपने जीवन का नैवेद्य अर्पित करते हैं। '**महित्वा इमे हिमवन्तः आहुः**' जिसके अनन्त विस्तार को देखकर हिमाच्छादित हिमालय के शिखर भी मौन आराधना में व्यस्त हैं।

'**यस्य च समुद्रं रसया सहहाहुः**' और जिसकी महिम ने पृथ्वी के चारों ओर फैले महासिन्धुओं की वाणी को मुखर कर दिया है। उसके हृदय की भावनायें गम्भीर घोष बनकर अनवरत संगीत में व्यक्त होती हैं।

'**इमा प्रदिशो यस्य बाहू**' उसी विश्वात्मा की दिशा रूप बाहो ने समस्त ब्रह्माण्ड को अपने आलिंगन में बाँधा हुआ है। सृष्टि के सभी जड़-चेतन जीवन उसकी गोद में उसी विश्व माता के आँचल में पल रहे हैं।

'**कस्मै देवाय हविषा विधेम**' हम सब मानव उस विश्वात्मा के ही चरणों में अपना हविष चढ़ाते हैं। उसके यज्ञ में हवि बनकर जीने की कामना करते हैं।

कस्मै देवाय

रे मन, उसका कर चिन्तन।
ऊँचे-ऊँचे व्योम विचुम्बित
शैल-शृंग उत्तुंग हिमावृत
करते जिसका आराधन
रे मन उसका कर चिन्तन।

विरहिन व्याकुल-सी सरिताएँ,
बढ़ा-बढ़ाकर दीर्घ भुजाएँ
करती जिसका आवाहन।
रे मन उसका कर चिन्तन।

युग-युग के वियोग से विह्वल,
सागर जिसे पुकारे प्रतिपल
करता जिसका अभिनन्दन
रे मन उसका कर चिन्तन ॥

देवता – इन्द्रः ।

विशं विशं मघवा पर्यशायत, जनानां धेना अवचाकषद् वृषा ।
यस्या ह शक्रः सवनेषु रण्यति, स तीव्रैः सोमैः सहते पृतन्यतः ।।

ऋक्–१०.४३.६

'**मघवा**' परमैश्वर्यवान् ईश्वर '**विशं विशं**' प्रत्येक मनुष्य में '**परि-अशायत**' लेटे हुए हैं, चुपके-से व्यापे हुए हैं और '**वृषा**' वे सुखवर्षक ईश्वर '**जनानां**' सब मनुष्यों की '**धेनाः**' ज्ञान-क्रियाओं को '**अवचाकषत्**' देख रहे हैं या प्रकाशित कर रहे हैं। '**अहः**' परन्तु '**शक्रः**' ये सर्वशक्तिमान् ईश्वर '**यस्य सवनेषु**' जिसके ज्ञान निष्पादनों में '**रण्यति**' रम जाते हैं, इन्हें स्वीकार कर लेते हैं। '**सः**' वह पुरुष '**तीव्रैः सोमैः**' अपने इन तीव्र सोमो द्वारा, महाबली उच्च ज्ञानों द्वारा '**पृतन्यतः**' सब आक्रमणकारियों को, बड़े-से-बड़े हमलों को '**सहते**' सहता है, जीत लेता है।

जन-जन के मन ईश्वर है। सब जग उसका ही घर है।
रमणशील सब में रमता है, सब पर ही उसकी ममता है।
वही प्रेम का सागर है, तन-मन उसका ही घर है।
अटल रहेगी श्रद्धा जिनकी, विपदा मिट जायेगी मन की।
उन्हें न कुछ भी दूभर है, उनका विश्वास अमर है।
जो दुःख में सुख से रह लेते, काँटों को हंस कर सह लेते।
जिनका खेवट ईश्वर है, उनको फिर किसका डर है।

देवता—अग्निः।

> आ हि ष्मा सूनवे पिता, आपिर्यजत्यापये।
> सखा सख्ये वरेण्यः॥ ऋक् १.२६.३॥

'सूनवे' पुत्र के लिए **'पिता'** पिता **'हि' 'स्म आयजाति'** सर्वथा सहायक है ही। **'आपिः आपये'** बन्धु बन्धु के लिए **'वरेण्यः सखा सख्ये'** श्रेष्ठ मित्र मित्र के लिए सर्वस्व देता है। तुम हमारे सखा भी हो, बन्धु भी हो, पिता भी हो।

हे प्रभु मेरे परम सखा!
तुम्हीं बन्धु हो, तुम्हीं सनेही, तुम्हीं हो मात-पिता।
दुःख में धीरज देनेवाले कष्टों में सुध लेनेवाले।
तुम्हीं सहाय सदा, हे प्रभु मेरे परम सखा।
कभी प्यार से पिता पुकारूँ, कभी बन्धु कह तन-मन वारूँ।
कभी स्नेह से कहूँ सखा, हे प्रभु मेरे परम सखा।
तुम्हीं हमारे पथ-दर्शक हो, पूर्ण हमारे हितचिन्तक हो।
तुम्हीं से हृदय मिला, हे प्रभु मेरे परम सखा।

देवता – ईश्वरः ।

यतो यतः समीहसे, ततो नो अभयं कुरु ।
शं नः कुरु प्रजाभ्यः, अभयं नः पशुभ्यः ॥ यजुः– ३६. २२. ॥

हे प्रभु ! हम आपकी प्रजा हैं, आप से अभय की भिक्षा लेने आपके द्वार पर आये हैं।

'यतः यतः संईहसे, नः अभयं कुरु' - जहाँ - जहाँ भी आपकी गति है – और वह सर्वत्र ही है, वहाँ - वहाँ से हमें भय रहित करो ।

विशाल पृथ्वी पर आपका राज्य है, अतल महासागर पर आपका ही शासन है। आपके संकेत पर ही सूर्योदय और सूर्यास्त होते हैं, आपकी ही आज्ञा से पवन चल रहा हैं, बादल बरसते हैं, रात्रि आती है, प्राणी जन्म लेते हैं, मृत्यु आती है। सर्वत्र आपका ही शासन है।

आपके शासन में आपके ही आत्मज होकर भी हम भयभीत हो जाते हैं। हमारा संशयशील मन आपकी दिव्य-शक्तियों को देखकर उनसे ही आत्मरक्षा के लिए भयातुर हो जाता है ।

हे प्रभु ! हमें आश्वासन दो कि ये शक्तियाँ हमारे लिये मंगलदायी बनकर आती हैं । आप इन देवशक्तियों से ही भावना के कल्याण कार्य चला रहे हैं । **' नः प्रजाभ्यः शं कुरु नः पशुभ्यः शं कुरु '** हमें जो कुछ प्रिय है, हमारी सन्तान, - हमारे पशु—सब इनकी छत्रछाया में आस्वस्त रहें, यही आपसे कामना है। आपसे अभय पाने के बाद हम सर्वथा निर्भय हो जायेंगे, हमारा मन सर्वथा शान्त और आनन्दमय हो जायेगा ।

अभय कामना

भय रहित हमें प्रभु कर दो।
श्रद्धा, विश्वास अमर दो।

अगणित इन सब देव-शक्तियों,
के अधिनायक तुम हो,
जीवन अमृत अक्षय,
जग के नियम-नियन्ता तुम हो।
करते तुम्हीं सूत्र-संचालन;
चाहे स्वर्ग, नरक हो।

नहीं माँगते हम प्रभु! तुमसे
शाश्वत जीवन का वरदान।
निर्भय रहें; मुक्त बन्धन हों,
दो क्षण ही चाहे हों प्राण।

मंगल हो सब जीव-जगत का
अभय दान कर दो।
सभी तरह के उपद्रवों से
मुक्ति मिले यह वर दो।

देवता – इन्द्रः ।

‘ यच्चिद्धि शश्वतामसि
इन्द्र, साधारणस्त्वम् ।
तं त्वा वयं हवा महे ।।

ऋक्–८.६५.७

सर्वनियन्ता प्रभु केवल भक्ति से ही प्रसन्न होकर कृतार्थ नहीं कर देंगे, यह जानते हुए भी भक्तिविभोर ऋषि प्रभु का आह्वान करता है—

हे इन्द्र ! आप शाश्वत हैं, आपकी सम्पूर्ण व्यवस्था भी शाश्वत नियमों पर आधारित है। किसी भी एक व्यक्ति की–चाहे वह कितना ही भक्त हो–पुकार पर आप सनातन नियमों को शिथिल नहीं कर सकते ।

आपकी दृष्टि में सभी समान हैं। साधारण समान भाव से आपने सबको अपनी शक्ति का अंश दिया है। आपकी दया और करुणा के सभी पात्र हैं। अपने कर्मों के अनुसार सबको आपकी महानिधि का भाग प्राप्त होता है।

फिर भी हे प्रभु ! **‘यत् चित् हि त्वं शश्वता साधारणःअसि’** मेरा मन यही स्वीकार करने में आनन्द अनुभव करता है कि आप सबके लिए साधारण होते हुए भी मेरे लिये अपने हृदय में शाश्वत स्नेह भाव रखते हैं ।

मेरे इस भ्रम को स्थिर रखिये । मेरी यह भ्रॉति ही मुझे प्यारी है । **‘ तं त्वा वयं हवामहे ’** आप मेरी पुकार सुनें-न-सुनें, मेरा मन इस पुकार से पवित्र होता है, मुझे पुकारने दीजिये ।

तुम मेरे हो

'तुम मेरे हो, तुम मेरे हो' मेरी यही पुकार।

सबके एक तुल्य हृदयेश,
प्रिय हो तुम सबके अविशेष,
फिर भी हे मेरे प्राणेश!
समझ रहा हूँ तुम पर मेरा कुछ विशेष अधिकार।

सबके हो क्यों कर मैं मानूँ,
अपना ही केवल मैं जानूँ,
युग-युग से तुमको पहचानूँ,
हे शाश्वत! हे विश्वनियन्ता! करुणागार अपार!

इतनी सी क्षमता मैं पाता,
तुमको अपना ही कर पाता,
और किसी का तुमसे नाता,
यदि होता तो रह सकता था कैसे मेरा प्यार?

पलकों में प्रिय, तुम्हें छिपाऊँ,
ना देखूँ तुमको, न दिखाऊँ,
बार-बार मैं बलि-बलि जाऊँ,
मेरा है सर्वस्व निछावर,
तुम पर प्राणाधार!

देवता – यज्ञाः ।

त्वमग्ने व्रतपा असि देव आ मर्त्येष्वा ।
त्वं यज्ञेषु ईड्यः ॥

ऋक्. ८. ११. १. यजु. ४. १६
अथर्व० – १९. ५९. १. ॥

' हे अग्ने त्वं व्रतपा असि ' हे ज्योति स्वरूप ! आपके चमत्कार का कोई अन्त नहीं । अपनी अनन्त शक्तियों का स्वयं विस्तार करके आपने उन्हें स्वयं ऐसे व्रतों में, अटल नियमों में बाँध दिया है कि कोई शक्ति अपने कार्य-क्षेत्र का, अपने अधिकारों का अतिक्रमण नहीं कर सकती । आप स्वयं उन अटल नियमों के आधार पर ही सम्पूर्ण व्यवस्था कर रहे हैं । आप ही व्रत विधाता हो और आप ही व्रत पालक । **' त्वं यज्ञेषु मर्त्येषु ईड्यः '** इसलिए हे प्रभु ! आप ही हमारे सब यज्ञों में पूजनीय हो और आप ही मानव-जगत के वन्दनीय हैं ।

कैसा यह विचित्र व्यापार ।
उन नियमों में बँधे आप ही जिनमें बाँधा था संसार ।
अपनी दिव्य शक्तियों को भी मर्यादाओं में बाँधा ॥
अपने ही विधान को अपनी सीमाओं में साधा,
अपने ही तत्वों से तूने बना लिया संसार ॥

देवता – भगः ।

उतेदानीं भगवन्तः स्याम, उत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम्
उतोदिता मघवन्त्सूर्यस्य, वयं देवानां सुमतौ स्याम ।।

यजुः ३४.३७ ।।

माता, प्रकृति की दिव्य-शक्ति पर पूर्ण श्रद्धा होने के बाद तीनो कालों में सभी देव-शक्तियों के अनुकूल रहने की कामना से वेद के आद्य कवि विनति करते हैं ।

'**मघवन् इदानी भगवन्तः स्याम**' हे तेज पुञ्ज स्वयं प्रकाश प्रभु ! हमें वर दो कि हम आज भी ऐश्वर्यशाली हों और आगे भी हमारा ऐश्वर्य स्थिर रहे ।

'**वयं देवानां सुमतौ स्याम**' आपकी दिव्य-शक्तियो का वरदहस्त हमारे ऊपर सदैव बना रहे ।

सब देव दयालु रहें हम पर, ऐश्वर्य हमारा रहे अमर ।
हो उषाकाल की मधुवेला, या मध्य दिवस का सूर्य प्रखर ।
संध्या की धूमिल छाया हो; अथवा शीतल रात्रि मधुर ।
सबका स्नेह-भरा मंगल मय, हाथ रहे हम पर सुखकर ।
सब देव दयालु रहें हम पर । ऐश्वर्य हमारा रहे अमर ।

देवता – इन्द्रः ।

स नः शक्रश्चिदाशकत्
दानवाँ अन्तराभरः ।
इन्द्रो विश्वाभिरूतिभिः ।।

ऋक्-८.३२.१२ ॥

'**सः**' वह '**शक्र**' शक्तिमान् '**नः चित्**' हमें भी '**आशकत्**' शक्तियुक्त करे ! क्योंकि वह '**दानवान**' दान देनेवाला '**अन्तराभरः**' अन्तस्तल को भरनेवाला है । '**इन्द्रः**' वह परमेश्वर अपनी '**विश्वाभिः**' सब '**ऊतिभिः**' रक्षाओं से हमें समर्थ करे ।

जगत उद्यान के हे दिव्य माली !
सकल जग के विधाता शक्तिशाली !
खड़े हम दीन कब से हाथ खाली,
कृपा की दृष्टि क्यों तुमने हटा ली ?
कहाँ पर नाथ ! वह जाये भिखारी,
जिसे हो नित्य ही की भीख प्यारी ?
महादानी तुम्हारा नाम जग में,
प्रतीक्षा में खड़ा कब से सजग मैं ?
बटोही दूर से मैं आ रहा हूँ,
नहीं कुछ याद, मंजिल पर कहाँ हूँ ?
यहाँ से शीघ्र ही चलना नियत है,
अगम जग-सिन्धु निश्चित भी न पथ है ।

अन्तःदीप

मिली हैं शक्तियाँ मुझको बहुत कम,
करूँगा पार कैसे पन्थ दुर्गम ।
निराशा का अँधेरा छा रहा है,
नजर दीपक न कोई आ रहा है ।
तुम्हीं हो नाथ विपदा में सहायक,
तुम्हीं हो दीनरक्षक, लोकनायक ।
न लौकिक चाह मुझको कुछ रही है,
विनय, हे प्राणधन, तुमसे यही है—
करो सामर्थ्यमय मन-प्राण-जीवन,
करूँ जिससे विफल मैं मोह-बंधन,
दया कर नाथ दुखिया का करो हित,
गहन तम भेद-पथ कर दो प्रकाशित ।

देवता – मरुतः ।

गूहता गुह्यं तमो, वियात विश्व मत्रिणम्
ज्योतिष्कर्ता यदुश्मसि ।

ऋक्–१. ८६. १० ॥

खोलो ज्योतिर्द्वार हृदय के, खोलो ज्योतिर्द्वार ।
गूढ़ अँधेरा छाया मन में,
गहन उदासी है जीवन में,
टूट गया आधार, खोलो ज्योतिर्द्वार ।

जीवन का यह पथ दुर्गम है,
आँखों क आगे सब भ्रम है,
कौन करेगा पार, खोलो ज्योतिर्द्वार ।

देवता – परमात्मा ।

एह्यूषु ब्रुवाणि ते अग्न इत्येतरा गिरः ।
एभिर्वर्धास इन्दुभिः ॥

ऋ० ६ १६.१६. यजु० २६.१३.

ज्योति अभिनन्दन तुम्हारा ।

आज नैनों के छलकते अश्रुओं से –
ही करूँगा मौन में वन्दन तुम्हारा ।

गीत मेरे थम गये हैं,
गान में अक्षम हुए हैं ।

हे हृदयवासी निकट अपने बुलाओ,
कर सकूँ जिससे कि पद-वन्दन तुम्हारा ।

देवता—निर्ऋतिः ।

नमोऽस्तु ते निर्ऋते तिग्मतेजो, अयमस्मान्विचृता बन्ध पाशान् ।
यमो मह्यं पुनरित् त्वां ददाति, तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे ।।

अथर्व. ६.६३.२. ।।

भगवान की नियामक यमशक्ति को जीवन की पथ-प्रदर्शिका मानकर उसके प्रति नतमस्तक होकर वेद का ऋषि पुकार उठता है—

'**यमाय नमो अस्तु**' हे मृत्यु देवता! यम् स्वरूप भगवान! हम मरण-धर्म मानव आपकी वन्दना करते हैं।

सृष्टि और संहार के सर्वनियन्ता स्वामी, आपकी मृत्यु में भी जीवन का बीज छिपा है। आपके '**तिग्म तेजो**' तीक्ष्ण-तेजस्वी काँटों में भी फूलों की रक्षा का संकेत है। रास्ते के काँटे हमें पथभ्रष्ट होने से सावधान करते हैं।

हे मुक्तिदाता! **'अयमस्मान् बन्ध पाशान् वि-चृत'** आप अपने तीक्ष्ण शूलों से हमारे बन्धनों को काटते हो।

अतः हे **'यमः पुनः इत् त्वा ददाति'** नियामक यम देवता फिर हमें पूर्ण मुक्ति के लिए आपको समर्पित करते हैं। मृत्यु भी मुक्ति का मार्ग बनकर ही हमारे सामने आती है। इसलिए हम फिर **'मृत्यवे नमः'** मृत्यु को प्रणाम करते हैं।

नमस्कार, पथ के हे कण्टक। नमस्कार हे शूल! महान्।
सबके बंध-पाश का कर्तन करके करते मुक्ति प्रदान।

सावधान करते मानव को, मर्यादा का स्मरण दिलाते।
यम स्वरूप धर इस पृथ्वी पर, कँटक बनकर तुम आते।
नमस्कार हे भक्ति देवता, मृत्यु रूप भगवान।

देवता–अग्निः।

त्वं ह्यग्ने! अग्निना,
विप्रो विप्रेण सन् सता।
सखा सख्या समिध्यसे॥

ऋक् ८.४३.१४.॥

'**अग्ने**' हे अग्ने! '**त्वं**' तू '**हि**' निःसन्देह '**अग्निना**' अग्नि द्वारा '**समिध्यसे**' प्रदीप्त किया जाता है। '**विप्र**' तू विप्र परमज्ञानी '**विप्रेण**' मुझ ज्ञानी द्वारा, '**सन्**' तू सत, श्रेष्ठ '**सता**' मुझ साधु श्रेष्ठ द्वारा और '**सखा**' तू सच्चा सखा '**सख्या**' मुझ सखा द्वारा '**समिध्यसे**' प्रदीप्त किया जाता है, प्रकाशित किया जाता है।

'**उत् प्रपित्वे उतमध्ये अन्हाम्**' काल परिवर्तन के साथ वह नष्ट न हो। गगन में मध्याह्न का प्रखर सूर्य हो या शाम की ढलती वेला, '**उत सूर्यस्य उदितौ**' अथवा सूर्योदय की पहली किरणें ही भूतल पर उतरी हों–हमें सब समय आपकी अनुकम्पा प्राप्त होती रहे।

प्रेम दीप

प्रेम के आदान से ही प्रेम का दीपक जले ।

ज्यों हृदय की भावनायें, नेह का दीपक जगायें ।
ज्ञान के सम्पर्क से ही, ज्ञान का सौरभ जगायें ।

संत के सत्संग से ही, सत्य का मोती मिले ।
प्रेम के आदान से ही, प्रेम का दीपक जले ।

व्यर्थ है मेरी तपस्या, व्यर्थ मेरी प्रार्थना है ।
अर्चना में भी हमारे स्वार्थ की ही याचना है ।

पूर्ण तब होगा समर्पण शरण तेरी जब मिले ।
प्रेम के आदान से ही प्रेम की ज्योति जले ।

देवता – आदित्यः ।

न दक्षिणाविचिकिते न सव्या,
न प्राचीनमादित्या नोत पश्चा ।
पाक्याचिद् वसवो धीर्याचिद्,
युष्मानीतो अभयं ज्योति रश्याम् ।।

ऋक्. २. २७. ११ ।।

चारों ओर से घिरे गहन अन्धकार में भयातुर निर्बल व्यक्ति केवल अभय याचना कर सकता है ।

हे समस्त ज्योति के प्रथम स्रोत प्रमु ! हमारे जीवन में मृत्यु की महारात्रि का भयंकर अन्धकार छा गया है । इतने संशयों और भयों से हृदय आच्छादित हो गया है कि **'न दक्षिणाविचि किते न सव्या'** दायें-बायें, उत्तर-पूर्व किसी भी दिशा में कोई सुनिश्चित मार्ग दिखलायी नहीं पड़ता ।

'न प्राचीनं न उत पश्चा' न सामने कुछ दिखायी देता है और न कुछ पीछे ।

'पाक्याचिद् धीराचित्' हमारी विवेक शक्ति बहुत अनुभव शून्य है । इतना धैर्य भी नहीं कि साधना-पथ पर चल सकें ।

'वसवः युष्मानीतः अभयं ज्योतिः अश्याम्' इसलिए हे वासव आदित्यो ! ज्योतिर्मय शक्तियो ! आपके पथ-दीप ही हमें अभय दे सकेंगे और आपकी ज्योति का स्पर्श पाकर ही हमारी अन्तःप्रज्ञा के द्वार खुलेंगे और हम अमृत मार्ग पर चल सकेंगे ।

आलोक भिक्षा

हे ज्योतिर्मय आओ !

हे आदित्यो आओ !

अन्तर में आलोक जगाओ ।

गह्वर गूढ़ अँधेरा मेरे

चारों ओर घिरा है

दक्षिण - उत्तर, पूरब - पश्चिम

सब में तिमिर भरा है।

भय जंजाल भगाओ

अभय रश्मि ले आओ ।

बुद्धि नये जंजाल बनाये

मन संशय में डोले ।

भीति भावना और

अविश्वासों के जलते शोले ।

शान्ति नीर बरसाओ

हे आदित्यो आओ

अन्तर में आलोक जगाओ ।

देवता – भूमिः ।

समह मेषां राष्ट्रं स्यामि समोजो वीर्यं बलम्
वृश्चामि शत्रूणां बाहुनानेन हविषाऽहम् ॥

अथर्व १२ १.

हम स्वराष्ट्र गौरव की रक्षा करने का प्रण लेंगे ।
राष्ट्र-शक्ति संरक्षण-वर्धन के हित तन-मन देंगे ।
शत्रु गर्व खंडित कर देंगे कोटि-कोटि बाहू बलवान ।
राष्ट्र-यज्ञ की अग्निशिखा पर जीवन कर देंगे बलिदान ।

जनं बिभ्रति बहुधा विवाचसं नाना धर्माणं पृथिवि यथौकसम्
सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती ॥

अथर्व० १२.१.

विविध वेश भाषाओं से है, शोभित देश हमारा ।
नानाविध धर्मों-विश्वासों की बहती है धारा ।
सब अभीष्ट पूरे करती है कामधेनु-सी माता ।
वसुधा का हर पुत्र उसी से मुँह माँगा वर पाता ।

देवता – भूमिः।

यस्यां गायन्ति नृत्यन्ति भूम्यां मर्त्या व्यैलबाः।
युध्यन्ते यस्यामा क्रन्दो। यस्यां वदति दुन्दुभिः।
सा नो भूमिः प्रणुदतां सपत्ना नसपत्नं मा पृथिवी कृणोतु॥

अथर्व – काण्ड १२, सूक्त १

हे माँ। तेरे वीर पुत्र हम विजयगीत हैं गाते।
रणभेरी सुन मातृभूमि की रक्षा हित बलि जाते।
शत्रु सैन्य विध्वंस पूर्ण कर विजय ध्वजा फहराते।
रचते नृत्य मगन मदमाते, उत्सव नवल रचाते।
विविध वेशभूषा सज्जित हैं, फिर भी सब तेरी संतान।
बैरी दल का नाश करें पल में पा तेरा ही वरदान।

देवता—भूमिः ।

यस्यां पुरो देव कृताः क्षेत्र यस्यां विकुर्वते
प्रजापतिः पृथिवीं विश्वकर्मा माशा —
माशां रण्यो नः कृणोतु ॥

अथर्व — काण्ड १२, सूक्त १.

मातृभूमि ! तेरे आँचल में,
दिव्य भवन निर्माण करें ।
शस्य-श्यामला धरती तेरी,
झोली में धनधान्य भरें ।

तेरे अन्तर में मणि माणिक,
स्वर्ण अमित रत्नों की खान ।
दिशा-दिशा से देश-देश से,
हो अविरत आदान-प्रदान ! !

देवता–भूमिः।

सत्यं बृहद् ऋतं उग्रं दीक्षा तपो
ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति।
सानो भूतस्य भव्यस्य पत्नी,
उरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु॥

अथर्व – १२ काण्ड, १ सूक्त

शाश्वत सत्य उग्र तप निष्ठा, ब्रह्म तेज यम-नियम विधान।
धारण पोषण करते प्रतिपल, पृथिवी का विस्तीर्ण वितान।
तीन काल, तीनों लोकों की, कामधेनु माता धरती।
ममता-भरे हृदय से सबका सर्वाधिक मंगल करती।
कोटि-कोटि मानव हम हैं माँ, तेरी ही सन्तान।

यस्या मर्त्तं कृष्टयः सम्बभूवुः
यस्या मिदं जिन्वति प्राण देजत्,
सा नो भूमिः पूर्व पेये दधातु॥

अथर्व – १२. १. ३

रत्नगर्भ सागर तेरे ही चरणों का करता अर्चन।
ममता मय आँचल में तेरे अन्न अमित हैं अक्षय धन।
शस्य श्यामला पृथिवी तुझ से ही पाते हैं मानव प्राण।
तेरे मस्तक की शोभा हैं रवि-शशि-तारे ज्योतिर्मान।
पूरे होते सभी मनोरथ माँ तेरा पाकर वरदान।
जय जय जय हे मातृभूमि, जय जय स्वराष्ट्र सम्मान।

देवता – भूमिः ।

असंबाधं बध्यतो मानवानां,
यस्यां उद्वतः प्रवतः समं बहुः ।
नाना वीर्या औषधीर्या त्रिभर्ति,
पृथिवी न प्रथतां राध्यता नः ।।

अथर्व – १२. १. १२

तेरे नेह भरे आँचल में मानव हम सब हैं निर्बाध ।
तेरा आशिष पाकर सारे मिट जाते अवरोध, विषाद ।
प्रगति करें या विगति, गोद में तेरे हैं हम सभी समान ।
कामधेनु बन नाना औषधि अक्षय देती है धन-धान ।

यार्णवेधिसलिल मग्र आसीद्,
या मायाभि रन्वचरन् मनीषिणः ।
यस्यां हृदये परमे व्योमन्त् सत्ये
नावृतः पृथिव्याः । सा नो भूमिः
त्विषिं बलं राष्ट्रे दधातूत्तमे ।।

अथर्व० १२-१

अतल महार्णव में डूबी थी मही मरुस्थल बनी सकल ।
दिव्य मनीषी देवों का सदियों का श्रम तप हुआ सुफल ।
माटी हुई सुहागिन अंतर में था शाश्वत कोष भरा ।
नयी भावना राष्ट्र शक्ति की जगी, श्यामला हुई धरा ।

देवता—भूमिः।

नीचैः पद्यन्तामधरे भवन्तु
ये नः सूरिं मघवानं पृतन्यात्।
क्षिणामि ब्रह्मणाऽमित्रानु नयामि स्वानहम्॥

अथर्व० १२. १.

जो शत्रु हमारे अधिनायक का करते द्वेष-भरा अपमान।
उनका गर्व चूर्ण करने को बनते हैं हम वज्र समान।
ब्रह्म तेज से पुण्य भूमि के, है अजेय यह देश महान्।
तेजवन्त पुत्रों ने पाया है जग माता का वरदान।

देवता—भूमिः ।

यास्ते प्राची प्रदिशो या उदीची
यास्ते भूमे अधराद्यच पश्चात् ।
स्योनास्ता मह्यं चरते भवन्तु,
या निपप्तं भुवने शिश्रियाणः ॥

अथर्व - १२.१.३१.

पूरब-पश्चिम दक्षिण-उत्तर विस्तृत सभी दिशाएँ ।
अविजित रहें मातृभूमि की आसमुद्र सीमाएँ ।
विश्व-शान्ति के लिए राष्ट्र का सफल रहे अभियान ।
शान्ति-दूत बन विचरें त्रिभुवन, करें विश्व-कल्याण ॥

देवता—भूमिः।

यत्ते मध्यं पृथिवि यच्च नभ्यं
यास्त ऊर्जस्तन्वः संबभूवुः।
सानो धेह्यभि नः पवस्व
माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः।
पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु।

अथर्व–काण्ड १२, सूक्त १

हम सब पृथ्वीपुत्र धरित्री,
माता तू सबकी है।
है विराट पर्जन्य प्रजापति,
माँ तू सौख्य सुभग की है।
पावन तेरे चरण मध्य,
मूर्धन्य सभी हैं ज्योतिष्मान्।
तेरे आशिष से ही जननी
जन-जन का होता कल्याण।